इन्सानियत
की

कहानियों
का
हला संग्रह

कलम प्रकाशन

४८-एम, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-१६
कलम प्रकाशन, [illegible]
प्रथम संस्करण 1978,
आवरण : सन्नू : बीकानेर
मूल्य 12 रुपये
मुद्रक : साहित्य प्रेस, 84 सी, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता-७
कवर मुद्रक-स्टैंडर्ड फोटो इंग्रेविंग, कलकत्ता

PHARK : STORIES : ISRAIL

अपनी बात

कहानियों का मेरा यह पहला संग्रह १५ वर्षों के लम्बे काल-खण्ड को अपने पृष्ठों पर समेटे हुए है। संग्रह को पहली कहानी १९६३ में प्रकाशित हुई थी और अन्तिम कहानी १९७७ में।

भारतीय इतिहास का यह काल बेहद उथल-पुथल और ऐसे परिवर्तनों से भरपूर रहा है, जिनके अनुभव सामाजिक और व्यक्ति जीवन में भी, नितान्त नये थे। इससे मजदूर वर्ग का आन्दोलन भी अछूता नहीं रह सकता था। उसे भी अनेक प्रभावों और अनुभवों के बीच से गुजरना पड़ा है।

मेरी ये कहानियाँ अगर इस कालावधि के मेरे निजी अनुभवों के दस्तावेज हैं, तो निजी अनुभवों को सार्वजनिक अनुभवों में परिवर्तित करने के आत्म संघर्ष की गाथा भी हैं। जब मैं ऐसा कहता हूँ, तो निश्चित रूप से अपने अनुभवों को उस मजदूर वर्ग से जोड़ता हूँ, जो मेरा निजी कुल-खानदान है, जो मेरा रचना-संसार है और जिसके प्रति मेरा कलाकार समर्पित है।

यह अधिकांश उन लोगों की कहानियाँ हैं, जो आज की परिस्थिति को, सामाजिक और व्यक्ति जीवन में भी, हूबहू स्वीकार लेने से इनकार करते हैं। उनका यह इनकार विभिन्न परिस्थितियों में कहीं मौन के रूप में है, तो कहीं मुखर, कहीं विरोध के रूप में है, तो कहीं सक्रिय प्रतिरोध।

इनमें ऐसे पात्र भी है, जिन्हें मेहनत की महान परम्परा से काट दिया गया है। ऐसी हालत में वे जिस सीमा तक परजीवी हो गये हैं, उस सीमा तक असामाजिक भी बल्कि समाज-विरोधी भी।

इन रचनाओं में संस्कारहीनता का एक ऐसा संस्कार लिये खुद से मुखातिब पात्र भी है, जो उन्हें संस्कारों के किसी भी बने बनाये ढांचे में ढलने नहीं देता।

एक मार्क्सवादी के रूप में मेरे कलाकार ने सीखा है कि सिर्फ वही सच नहीं है जो सामने है, बल्कि वह भी सच है, जो कहीं दूर अनागत की कोख में जन्म लेने के लिये कसमसा रहा है। उस अनागत सच तक पहुँचने की प्रकिया को तीव्र करने के संघर्ष को समर्पित मेरे कलाकार की चेतना अगर तीसरी आंख की तरह अपने पात्रों में उपस्थित नजर आती हो, तो यह मेरी सफलता है। दूसरे इसे जो भी समझें।

इन कहानियों को बहुत पहले ही पुस्तकाकार रूप में सामने आ जाना चाहिये था, लेकिन अनेक कारणों से यह टलता रहा है, जिसमें ऐसे कामों को कल पर टालने की मेरी अक्षम्य उदासीनता भी शामिल है। यह संग्रह आज भी आपके सामने न आया होता, यदि अरुण की सक्रियता इससे न जुड़ी होती।

कलकत्ता इसराइल

जुलाई, १९७८

सूची-पत्र

दर्द का रिश्ता

✶

पहले यह उसकी आदत नहीं थी। पहले तो जैसे उसकी हर बात फैसलाकुन होती थी और हर काम उस फैसले को पूरा करने के लिए होता था। वह कहा करता था, 'मैंने अपने नाम का मतलब मौलवी साहब से पूछ लिया है। जलाल हूँ........तो हूँ !' 'हाथ-पाँव होते हुए सिर्फ मुँह से काम लेने पर इस जमाने में गुजारा नहीं होता।' परिणाम स्वरूप उसने न सिर्फ अपना बल्कि अपने बाप का भी सिर कई बार तुड़वाया। बैरकपुर कोर्ट में बार-बार उसे और उसके बाप को जाना पड़ा।

किन्तु अब ? अब तो उसकी शीघ्र फैसला न करने और असमंजस में पड़े रहने की आदत-सी हो गयी है। आदत से अधिक विवशता। अनिर्णीत क्षणों में जीना जैसे उसकी स्वाभाविक गति हो गयी हो।

ऐसी ही हालत में जलाल कई बार उधर गया। सदर लाइन के अन्तिम मुहाने तक मुश्किल से पहुँच पाया। किन्तु लाइन के बाद सड़क पार कर बाड़ी की ओर जाने में हमेशा हिचकिचा गया और अपने को वहीं से घसीटता हुआ वापस कर लाया।

जलाल दिन भर कारखाने में और कारखाने के बाहर रोज-रोज उसके विषय में नयी-नयी खबरें सुनता और साथियों से पूछता, 'क्या कह रही थी? मेरे बारे में भी···आफिस के किस बाबू को उसने सलाम किया? क्या काम मिल जाने की उम्मीद है?'

लेकिन बतानेवालों को केवल इतना ही मालूम था कि आँचल झटकार कर चल देती है। शरमा कर बात नहीं करती, हँस कर बात करती है। अब चेहरे का 'नमक' सूख गया है। अगर फीके की·····'बस-बस' वह उन लोगों की बात अधूरी ही रोक कर हट जाता।
फिर वह हर शाम को टहलता हुआ-सा, चाय-पान के बहाने उस बाड़ी की ओर जाता। किन्तु लाइन के आखिरी मुहाने से ही अपने को लौटा लेता।

उस दिन जाड़े की बदली के कारण शाम बहुत बोझिल हो गयी थी। गहरे धुँधलके में पूरा शहर लिपटा हुआ था। रास्ते की बिजली बत्तियाँ तेल के दिये जैसी जल रही थीं। बदली थी, जाड़ा था, किन्तु हवा नहीं थी। ऐसे मौसम के कारण मन अन्दर से उदास हो गया था। रास्ते पर बहुत थोड़े से लोग धुएँ और धुंधलके में लिपटे हुए आ-जा रहे थे—जैसे किसी प्राचीन कन्दरा के बुत किसी करिश्मे से चल-फिर रहे हों। संभवत: मन की उदासी से ही अकारण-सी लगनेवाली पीड़ा जलाल के अन्दर पैठ गयी थी। अन्तर की किसी गरमाहट के अभाव में जलाल पर ठंडक का हमला और किसी भी दिन से अधिक हो रहा था। अस्वाभाविक और उत्तेजित स्थितियों को महत्वहीन बना लेना, उन्हें भी साधारण जीवन की गति जैसे ही व्यवहार में लाना—अपने आप में कितनी अद्भुत बात है। और कुछ नहीं तो वह आदमी अद्भुत हो ही जायेगा। इसलिए जलाल स्वयं अपने लिए न भी सही, किन्तु अनजाने ही दूसरों के लिए कुछ अद्भुत-सा अवश्य हो गया था। सिहरन से उसके

रोएँ खड़े हो गये। उसने अपने दोनों हाथों को सीने पर बाँध लिया। हाफ-कमीज के कारण उसकी आधी बाहें नंगी थीं।

साइकिल का किनारा पकड़े हुए जलाल उस बाड़ी के सामने चला गया। उसने जब-जब दुखों को बिलकुल नजदीक से महसूस किया है, तब-तब आगे बढ़कर उन सब कामों को पूरा किया है, जिन्हें दूसरे किसी समय न कर पाता। इसलिए जब उस दिन अनिर्णीत स्थिति में भी वह उस बाड़ी की ओर जा रहा था, तो सचमुच वहाँ नहीं जा रहा था, बल्कि कहीं और जा रहा था और कोई सीधे बाँह पकड़ कर लिये जा रहा था। अगर ऐसी बात नहीं होती तो वह उस बाड़ी तक कभी नहीं जाता, कत्तई नहीं जाता।

बाड़ी के दरवाजे के सामने ही एक छोटा-सा नीम का पेड़ था। पेड़ के नीचे उसके तने से लग कर एक छोटी-सी बच्ची बैठी थी। उसकी उम्र करीब चार बरस की रही होगी। उस लड़की ने अपने पाँव समेट कर फ्राक के नीचे कर लिये थे और चुपचाप मन मारे बैठी हुई थी। लड़की के दोनों हाथ उसके घुटनों पर थे और उसने सिर झुका कर अपने दायें गाल को हाथों पर रख लिया था। उसके बाल आगे की ओर बिखर कर घुटनों से नीचे फ्राक की लम्बाई तक चले गये थे। लकड़ी से कुछ दूरी पर जमीन पर बैठी एक बुढ़िया टिकिया बनाने के लिए लकड़ी के कोयले को सहेज कर बोरे में रख रही थी और माँड़ न देनेवाले होटल के भंडारी को बुदबुदा कर गाली दे रही थी। कुछ देर तक लड़की को देखने के बाद जलाल बुढ़िया के पास चला गया। उसे लगा, बुढ़िया जानी-पहचानी है, उसे भी अवश्य ही पहचान लेगी। बुढ़िया ने सिर उठा कर उसकी ओर देखा। वह चुप था। बुढ़िया ने ही पूछा, 'किसको खोजते हो बेटा ?'

जलाल को यह प्रश्न बड़ा ही अप्रत्याशित-सा लगा—जैसे वह इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। वह कुछ बोलना अवश्य चाहता था, किन्तु

उसके अन्दर अर्थ-धारण करनेवाला वाक्य नहीं बन पा रहा था। लगता था—वह बोलेगा तो गले में हकलाहट भर आयेगी।
बुढ़िया ने ही फिर पूछा, 'घर चाहिए क्या ?'
इतनी देर में खुद से लड़ते हुए उसने अपने को संभाल लिया। अपनी आवाज में दृढ़ता लाते हुए उसने कहा, 'वह नयी औरत इसी बाड़ो में तो रहती है''' जिसका नाम मरियम है ?'
बुढ़िया ने उसकी बात का कोई जवाब न दे कर पेड़ के पास बैठी लड़की की ओर देखा। वह लड़की बिजली के पंखे की भांति फड़फड़ा कर उठ खड़ी हुई और आंगन की ओर दौड़ गयी।
बुढ़िया ने कहा, यह उसकी बेटी है।'
जलाल ने पसीना पोंछने के लिए माथे पर हाथ घुमाया। पर वहाँ पसीना नहीं था। सिकुड़न की जमी तहें अवश्य थीं।
कुछ ही देर बाद वह बच्ची धीरे-धीरे लौट कर वापस आयी। इस बार आ कर वह जलाल के बिलकुल पास खड़ी हो गयी। उसे लगा, जैसे लड़की उसके हाथ की लटकी उंगलियों को पकड़ लेगी और उसने अनजाने हो अपने हाथ सीने पर समेट लिये।
बुढ़िया ने कहा, 'कहीं गयी होगी।'''बेटा, तुम लोग चलते-फिरते आदमी हो, उसे कहीं काम दिला दो न। बेचारी मारी-मारी फिर रही है। खाने को भी नहीं मिलता। .. मेरा भी कुछ बाकी है।'
इतनी देर में लगता था—वह लड़की जलाल से बिलकुल सट जायगी। उसके दामन को पकड़ लेगी। एक बार उसने लड़की की ओर देखा और बिना सोचे-समझे ही उसके मुंह से निकल गया, 'अच्छा!'
किन्तु उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्यों और किसके लिए अच्छा कह रहा है।
जलाल वहाँ से लौट.आया। कुछ आगे बढ़ने के बाद उसने मुड़ कर देखा—बुढ़िया कोयला सहेज रही थी और वह लड़की सरक कर रास्ते

पर चली आयी थी। दोनों हाथों से अपने कानों को ढँक कर खड़ी थी।···वह फिर ठहर कर न देख सका। तेज कदमों से चलने लगा। दो छोटी-छोटी मासूम आँखें उसकी पीठ में धँस गयी थी।

मरियम से न भेंट होने पर वह सोचने लगा कि यह अच्छा हुआ या नहीं। पर जैसे उसकी फैसला करने की आदत ही करीब-करीब खत्म हो गयी थी और वह असमंजस में पड़ा रहा। वह बड़े रास्ते पर चला आया। बड़ा रास्ता प्रायः सुनसान ही था। थोड़े-से लोग रास्ते पर चल-फिर रहे थे। स्पीड-लिमिट तोड़ कर चलनेवाली प्राइवेट-सेक्टर की बस भी रेंगती-सी आ रही थी। बस की हेडलाइट कुछ ही गज के अन्दर धुएँ में खो कर रह गयी थी। दूर-दूर तक घाटी के बादलों की तरह धुएँ का अम्बार लगा हुआ था। बिजली के जलते लट्टू धुएँ के तहखाने में कैद पड़े थे।

जलाल चलता हुआ एक पान की दूकान पर चला गया, पान खाकर आगे भी बढ़ गया। लेकिन दुकान पर खड़े लोगोंमें से किसी ने भी उससे बात नही की। उसे अचरज हुआ—इतने गहरे परिचय के लोग दुकान पर खड़े थे, किन्तु जैसे किसी ने उसे पहचाना ही नही। वैसे जलाल स्वयं किसी से मिल कर बातें करने के लिए तैयार नहीं था। किन्तु उस रास्ते पर भी वह कुछ चाहता अवश्य था, किसी से मिलकर बातें भी करना चाहता था। लेकिन····

असल में उस समय वह ऐसे आदमी की खोज में था जो पिछली जिन्दगी के बारे में बातें करता। मरियम के विषय में कुछ अनजान, कुछ जानकारी की बातें करता। और उसे लगा—किसी से न मिलने की इच्छा किसी ऐसे आदमी की खोज से पैदा हुई थी। और कोई ऐसा आदमी सचमुच ही उस समय रास्ते या उन दुकानों पर नहीं था, जो उससे ऐसी बातें कर सकता। और फिर वह रास्ते पर चलते-चलते ही स्वयं से बातें करने लगा—

"....तब हम कम्पनी के क्वाटरवाले स्कूल में पढ़ने जाया करते थे। सुनहले बालोंवाली वह लड़की आती और मौलवी साहब की बगल में बैठ जाती। उस लड़की को पहुँचाने के लिए रोज कोई न कोई आता था। हम उसे देखते, उससे अधिक उसके सुनहले बालों को देखते। जी करता—उसके बालों को छू कर देखें। बालों से उड़ती खुशबू को नजदीक से पी लें। वह अपने बालों को मेंहदी से रंग कर आती थी। मगर हम ऐसा नहीं कर पाते। वह रहीम सरदार की लड़की थी और रहीम सिर्फ कारखाने का सरदार ही नहीं था, गुण्डों का सरदार भी था।'
उसी समय एक खाली ट्रक घड़घड़ाता हुआ सड़क से गुजर गया। उसे अपने कानों पर उँगली रख लेनी पड़ी। अपने से ही बातें करने का सिलसिला टूट गया। न जाने क्यों उसे लगा कि तब की वह प्यारी-सी, सुनहले बालोंवाली खुशनुमा लड़की अब दोनों हाथों की दसों उँगलियाँ डाल कर अपनी गर्द-गुब्बार भरी राख-सरीखी लटों को नोंच रही है। उन बालों में हजारों जुएँ रेंग रही हैं....फिर उसका मन उदासी में डूब गया। लगा, आकाश के बादल और घने हो गये हैं।
फिर वह उसी नीम के पेड़ तक गया। किन्तु इस बार बाड़ी के दरवाजे पर कोई नहीं था। वहाँ इतना अँधेरा फैल गया था कि कोई दरवाजा टटोल कर ही अन्दर जा सकता था। कितनी ही देर तक वह बाड़ी के बाहर नीम के पेड़ के पास खड़ा रहा। किन्तु अपने से बाड़ी के अन्दर जाने का विचार एक बार भी उसके मन में नहीं आया। जाने कब तक वह उसी तरह खड़ा रहता या लौट भी आता। गनीमत हुई कि बुढ़िया बाड़ी से निकल कर आयी और जलाल लपक कर बुढ़िया के सामने चला गया। एक तरह से उसका रास्ता ही रोक कर खड़ा हो गया।
बुढ़िया ने कहा, 'मरियम आयी है। कहती थी, जब वह आया था, तो फिर आयेगा—उसे कहीं जाना था, नहीं गयी। तुम्हारे लिए बैठी है।'

बुढिया मरियम का नाम ले कर पुकारने लगी। वह बुढ़िया के पास से हट कर फिर नीम के घने साये में चला आया। कुछ ही देर में मरियम बाड़ी से निकल कर आयी। उसने अँधेरे में ही जलाल को देख लिया। दूर ही से उसने धीमी आवाज में कहा, 'जब आ गये तो अन्दर ही चले आते। कब से खड़े हो?...मैं क्या जानती थी कि कमों के मुकदमेबाज अब इतने शर्मीले हो गये हैं नही तो मैं बाहर ही खड़ी रहती।'

जलाल ने कुछ नही कहा, शायद बोलना भी चाहता तो उसके गले से आवाज नहीं निकलती। कभी-कभी तो उसके मन में यही बात उठ खड़ी होती थी कि कैसे मरियम के सामने जाऊंगा। और कई बार लाइन के मुहाने से लौट जाने में शायद यही बात काम कर रही थी। किन्तु उस समय उसे लगा कि प्रकाश होता और उजाले में ही मरियम ने यह बात कही होती। उजाले में वह उस चेहरे के भाव को देख लेता, जिस भाव को ये नपे-तुले वाक्य व्यक्त कर रहे हैं।

'आओ!'

जलाल मरियम के पीछे-पीछे बाड़ी में चला गया। मरियम के कमरे में चारपाई या तख्ता नहीं था। एक चट पड़ा हुआ था। चट पर उसकी बेटी सोयी हुई थी। उसने अपने को एक पुराने कम्बल में लपेट रखा था। कमरे में बैठने के लिए कोई और चीज नही थी। वह बिना कहे ही चट के एक सिरे पर दीवार के सहारे बैठ गया। कमरे में मीठे तेल का चिराग जल रहा था। मरियम ने सबसे पहले चिराग की लौ पर पड़ी कालिख की पपड़ी को हटा दिया। चिराग में और भी कुछ रोशनी उभर आयी। मरियम चिराग की ओर मुँह किये हुए थी और जब तक उसकी पीठ नजर आती रही, जलाल उसे देखता रहा। और जब वह घूम कर उसकी ओर लौटी तो जलाल ने अपनी नजरों को नीचे झुका लिया। वह चाह कर भी उसी ओर नहीं देख सका। जलाल को सिर झुकाये देख कर मरियम ने कहा, 'आखिर आये तो! लेकिन इतनी देर क्यों लगा दी?'

दो टान खींच जलाल के हाथ में दे गयी। फटे कम्बल में लिपटी मरियम की बेटी कभी-कभी कुनमुना रही थी। मरियम और जलाल दोनों चाय पी रहे थे। मरियम टीन के मग में चाय पी रही थी और वह अलमुनियम के पिचके गिलास में। जलाल ने पहली बीड़ी से दूसरी बीड़ी सुलगा कर पहली बीड़ी का बचा टुकड़ा मरियम को दे दिया। दोनों चाय और बीड़ी पी रहे थे। टूटे छाजन के कोने से हवा का हल्का झोंका आ जाता था और कमरे की मद्धिम-तरल रोशनी काँप जाती थी। जलाल ने कमीज के कालर को सरका कर कानों तक कर लिया था। मरियम ने इधर-उधर देखने के बाद कहा, 'तुम्हें ओढ़ने के लिए क्या दूँ?'

'जरूरी नहीं है। बिना चादर की शामें काटने की आदत है।'

दोनों आमने-सामने बैठे रहे। एक-दूसरे को देखते रहे। जैसे दो संग्रामरत व्यक्ति दिन भर एक-दूसरे से लड़ने के बाद इस समय हार-थक कर एक दूसरे के सामने बैठे हों। दोनों के ही चेहरे पर संग्राम की थकान और पराजय की हताशा है। जैसे संग्राम के दोनों प्रतिद्वन्द्वी पराजित पड़े हों। तब विजय श्री किसे मिली?

""सब तरह से किसी को अपना बना लेने के लिए लड़ी गयी लड़ाई में परिणामों के उलट-पुलट जाने से असहाय गले की आवाज आर्तनाद भी न बन सकी, घुटती घुटती खत्म हो गयी।

फटे कम्बल में लिपटी बच्ची अपना पाँव तान कर काँपने लगी। मरियम बच्ची को थपकी दे कर सुलाने लगी।

जलाल ने आत्मीय और सहज ढंग से पूछा,'इसका बाप अब कहाँ है?'

'जेल में!'

'कितने दिनों के लिए?'

इस बार जनम भर के लिए।'

जलाल की आँखें फैल गयीं। पूरी उम्र की कैद की भयानकता का चित्र तो उसके सामने नहीं उमरा, बल्कि उमसे मरियम के लिये पैदा हुए अनिश्चित जीवन की आशंका से वह बिंध गया। कोई और समय होता तो इस स्थिति से वह संभवतः खुश होता। इस स्थिति से खुश होने की कल्पना उसके मन में कभी थी। लेकिन मरियम हर तरह से बरबाद हो जाय इसलिए वह कल्पना उसके मन में नहीं थी, बल्कि वह कल्पना उसके मन में इसलिए थी कि मरियम उसके समक्ष हर तरह से पराजित हो कर उसकी हो जाय। कदाचित् इस पहलू की सबसे बड़ी ईमानदारी यह थी कि मरियम हर तरह से पराजित हो कर भी उसकी नहीं होगी—अगर ऐसा वह सोच पाता तो इस पराजय की स्थिति की कल्पना उसके मन में कभी नहीं आती। संभवतः इसीलिए इस स्थिति को प्रत्यक्ष सामने पा कर वह खुश नहीं हुआ।
इसी बीच शायद मरियम जलाल के अन्दर उठनेवाली हलचल को ताड़ गयी। उसने कहा, 'लेकिन वह जेल नहीं भी जाता तो भी मैं काम करने के लिए आती। और काम के लिए इस शहर, इस कारखाने से अच्छी जगह कोई और नहीं हो सकती थी।'

जलाल चुपचाप मरियम की बातें सुन रहा था। किन्तु अभी-अभी उसके मन में पैदा होनेवाली हलचल शांत नहीं हुई थी। उसके जेल से बाहर रहने पर भी मरियम काम करती और काम के लिए इसी शहर, इसी कारखाने में आती। केवल काम के लिए ही आती? इस शहर में उसके आने का क्या कोई भी और मकसद नहीं हो सकता था? जैसे उसने जोर से कहना चाहा—क्या तुम मेरे लिए नहीं आती?
फिर मरियम ने ही कहा, 'मैंने फैसला कर लिया था कि उसकी बीवी भी रहना पड़े तो भी काम करूँगी।
'तो क्या अब तलाक हो गया?'
'तलाक-वलाक में क्या रखा है। नहीं चाहूँगी तो कोई जबरन रख

लेगा अपने पास !'

'तो अब नही जाओगी, उसके पास ?'

'कोई कसम नही खायी है। लेकिन अब उसके पास जाने से फायदा क्या है ?' मरियम स्थिर हो, पल्थी मार कर बैठ गयी। कहने लगी, 'मैं क्या करती। वह चाहे जो करता, मेरे साथ ठीक से रहता तो सचमुच उसके लिए मेरे दिल में मुहब्बत होती। चोरी, लफंगई, पाकिटमारी चाहे जो करता, सिर्फ वह खून नहीं करता तो उसे फरार होने की नौबत नही आती। कभी-कभी तो वह अकारण ही फरार हो जाता। तब लगता—वह मुझसे फरार हुआ है।

वह तुमको मारता भी था ?

'मुझको ? मुझको क्या खाकर मारेगा''''असल में वह बड़ा ही डरपोक था। मेरी एक ही डाँट पर उसकी सिट्टी गुम हो जाती थी। अंत में तो ऐसा लगा कि जब मैं चाहूँ उसको पीट दूँ, वह मेरा कुछ नहीं कर सकेगा। न जाने कैसे वह इन्सानों की जान मार देता था ? लेकिन इससे भी जो बुरा लगता था, वह था उसका ढंग। एक दिन भी मेरी समझ में नहीं आया कि आखिर वह चाहता क्या है ? जगदल से फरार हो कर शिवपुर गया। मैं हफ्तों चिन्ता में पड़ी रही कि कहाँ है, क्या हुआ। एक महीने बाद उसने खबर भिजवायी कि मेरे साथ रहना चाहती हो तो यहीं चली आओ। मुझे बड़ा बुरा लगा, जैसे मुझसे ही उसका फसाद हो। फिर भी मैं शिवपुर गयी। वहाँ से भी मछुआ बाजार चला आया, फिर कुल्टी, आसनसोल ! इन पाँच बरसों में मैं उसके पीछे-पीछे भागती रही। खैर, मैंने समझ लिया था कि अब यही होगा। मैं ऐसा कर लेती। लेकिन मैंने कहा न कि उसका ढंग जो था—उसका मैं क्या करती। घर से बाहर–बिलकुल ठीक-ठाक जाता। हँस बोलकर जाता। किन्तु दो ही घण्टे बाद वापस आता तो मुँह फुलाये-लटकाये होता। कुछ भी पूछने पर बोलता नहीं। बोलता भी तो चोट मारने वाली बात। मैं

तंग आ गयी थी। आदमी भी कहीं ऐसा होता है। बिना कारण के मुँह बना ले। बिना 'झगडा-फसाद के ही घण्टों बातें बद रहतीं। इसलिए सजा उसे नहीं भी होती तो भी मैं चली आती।'

'वह तुम्हें रोकता नहीं ?'

वह क्या खाकर रोकता। कहा नहीं, मेरी एक डाँट पर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। सचमुच वह डरपोक था। अचरज होता है कि वह इतनी जानें कैसे मार सका। और क्या बताऊँ, सिर्फ दस-रुपये पर जान मार आता था। जिस दिन कोई उपाय नहीं नजर आता, उस दिन हड्डीवालों और चमड़े वालों से रुपये लेकर गाय-भैंसों को रात में जहर खिलाता चलता। हर जानवर पर उसे दो रुपये मिलते। कई बरसों से वह जान-मराई का, खून का ही पैसा मुझको भी खिलाता रहा। इसमें क्या झूठ है कि मैं भी दूसरों के खून पर ही पलती रही हूँ। चली न आती तो क्या करती ? यह साड़ी जो देख रहे हो, यह आखिरी जान-मराई में मिली है। वह कोई बड़ा आदमी था, जिसको इसने जान मारी थी और जिसने इसको रुपये देकर खून कराया था, वह कोई दुकानदार था। उसने ही यह साड़ी दी थी।'

'तुम्हारे बाप ने ऐसा ही लड़का खोज निकाला था। बात भी ठीक थी। उन्हें अपने दल के आदमियों के सिवा कोई पसंद भी क्यों आता !'

जलाल चुप हो गया। थोड़ी देर बाद उसकी समझ में आया कि अनजाने ही उसने कुछ कड़ी बातें कह दी हैं। किन्तु मरियम के चेहरे पर शिकन भी नहीं थी। किसी भी आंतरिक अभिव्यक्ति की भाव-रेखाओं से उसका चेहरा खाली था। वह कुछ अलग हट कर चिराग की लड़खड़ाती लौ को अपने आंचल में ढंककर सँभालने लगी थी। बाहर शायद बरखा शुरू हो गयी थी। टूटे खपरैल से हवा का झोंका आ रहा था और चिराग की लौ लड़खड़ाने लगी थी। जलाल को भी जाड़ा महसूस हुआ। दीवार की ठंडक उसकी पीठ में लग गयी थी। वह दीवार से अलग हो गया।

जलाल कमरे को गौर से देखने लगा। कमरे के थोड़े से सामानों में खाने-पीने या खाने-पीने की चीजें रखने का समान नहीं था। उसको चूल्हा जलाने और खाना बनाने की कोई शिनाख्त नजर नहीं आयी।
जलाल ने अपनी जेब से बीड़ी निकाल कर मरियम को दी। मरियम ने चिराग से बीड़ी जला कर दो-कश खींचने के बाद फिर जलाल को दे दी। बीड़ी हाथ में ले कर उसने पूछा, 'आज तुमने खाना खाया है ?'
'यों ही कुछ खा लिया है, चाय-वाय पी ली है।
'लेकिन जाड़े की रात में.....'
'अरे, जाड़े या गरमी की रात क्या ! सब रातें बराबर हैं। जैसे-तैसे सब रातें बीती हैं और बीतेंगी भी।'
'रहो, मैं तन्दूरी और कबाब ला देता हूं।'
मरियम, जलाल को देखने लगी। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। किन्तु उसकी आंखों में बहुत बड़ा विस्मय भरा प्रश्न था—जैसे वह कहना चाहती हो—पहले तुम सोच लो, क्या करने जा रहे हो।
मरियम, की आंखों मे झांक कर देखने के बाद कई क्षणों तक वह अपनी, नजरें झुकाये ही रह गया। अपने दोनों घुटनों पर बाहों पर बांध लिया और पांव के अंगूठे से चट के उभरे सूते को कुरेदने लगा। जैसे याद ही न रहा कि अभी ही उसने रोटी और कबाब ले आ देने की बात कही थी। कुछ देर तक चुप रहने के बाद मरियम ने ही फिर कहा,'एक काम करना।'
जलाल ने सिर उठा कर उसकी ओर देखा।
'कल सबेरे छः बजे लेबर आफिस में आओ। पैरवी से, चाहे जैसे भी लेबर आफिस के गांगुली बाबू को अगर ठीक कर सको तो करो। मैं कहती हूँ तो बेहूदा सिर्फ हंसता है। कहता है—रहीम सरदार की बेटी को काम दे कर क्या होगा। बात ही नहीं समझता। बदली-सदली मिलने लगे, फिर कैजुअल में चली जाऊंगी। तब देख लिया जायेगा। लेकिन बाबू घूस तो लेगा ही। उसी के लिए दस रुपये का इन्तजाम करना।'

यह कह कर मरियम उठ खड़ी हुई। किन्तु सीधे हो कर खड़ी भी न होने पायी कि 'ओह' कह कर फिर बैठ गयी। अपने हाथ से ही अपनी कमर सहलाने लगी। चेहरे पर जर्दी छा गयी।
जलाल चौंक गया। उसने थोड़ा आगे की ओर झुकते हुए पूछा, 'क्या है ?'
'कुछ नहीं! कभी-कभी कमर में दर्द उठ आया करता है।'
'कैसा दर्द है ?
कमर से मरियम का हाथ हट गया। घुरती नजरों से उसने जलाल की ओर देखा। कई क्षणों तक वह उसी तरह जलाल की ओर देखती रही। किन्तु उसके चेहरे पर सहजता नहीं लौटी। जलाल को घबड़ाहट होने लगी। कुछ देर तक यह स्थिति बनी रही। अंत में ऐसा लगा जैसे मरियम जलाल की ओर देखते हुए कहीं और देखने लगी हो और अचानक ही उसकी पलकें बड़ी शीघ्रता से झपक गयीं। उसका सिर भी नीचे की ओर झुक गया। अनावश्यक रूप से ही उसने आँचल भी सरका लिया। धरती की ओर देखते हुए ही मरियम ने कहा, 'पूछते हो, कैसा दर्द है! इसी दर्द का रिश्ता है जो तुम आये हो। नहीं तो तुम्हीं क्यों आते। इस शहर में अपने कहलानेवाले, सैकड़ों लोग हैं, कोई तो नहीं आया।'
जलाल और कुछ न सुन सका और न देख ही सका। मरियम का माथा और झुक गया। मटमैले कत्थई रंग की साड़ी में लिपटी उसकी देह काँपने लगी।
जलाल कई क्षणों के लिए अपनी वर्तमान स्थिति को भूल गया। बिजली का कोई लचीला तार उसके अंदर टूट गया था। जलाल को पता नहीं चला कि कब मरियम ने खड़ी हो कर एक फटी-पुरानी धोती दोहरा कर अपनी देह पर डाल ली। कमरे के बाहर दरवाजे के अंधेरे में खड़ी होकर बाड़ीवाली बुढ़िया मरियम को धीरे से पुकार रही थी।

बुढ़िया के हाथ में लकड़ी की आगवाली बोरसी थी। उस घुप्प अँधेरे में बोरसी का मद्धिम शोला मधु के ताजे छाते की तरह फैला था। मरियम ने दो बार बोरसी दे जाने के लिए बुढ़िया से कहा मगर बुढ़िया कमरे में नहीं आयी। मरियम ही दरवाजे पर गयी। बुढ़िया के हाथ से अँगीठी लेने लगी। मरियम ने कहा, 'घर में दे क्यों न गयी। खड़े खड़े चीखती हो?'

जलाल ने सुना, बुढ़िया बहुत ही धीरे-धीरे से कह रही थी, 'जललवा तो घर में ही है! तब कैसे आती?'

'धत् बुढ़िया, तुम भी तो....बस!' मरियम के हाथ की बोरसी काँप गयी थी। बोरसी से उभरते शोले का अक्स उसके चेहरे के आईने में शायद प्रतिबिम्बित हो रहा था। क्योंकि मरियम का चेहरा भी शोले जैसा ही गुलाबी हो गया था। जलाल उन दोनों को दरवाजे पर ही छोड़ कर बिना कुछ कहे ही कमरे से तेजी से निकल आया।

बाहर माघ की बदली, तिरछी बूंदों में टपक रही थी। पतली-ठंडी तेज हवा चल रही थी। पूरा शहर मरघट के सन्नाटे में डूब गया था। दुकानें बंद हो गयी थी। रास्ते, गलियों और लाइनों में आदमियों की कौन कहे, गायें और कुत्ते भी नहीं थे। उस रात शायद जलाल को ठंडी तेज हवा और माघ की बरसात की बूंदें अपने असर में नही ले सकीं। दस मिनट के रास्ते को वह पाँच ही मिनट में तय करके अपने कमरे में चला गया। पूरे रास्ते भर एक बार भी उसने पानी की बूंदों को महसूस नही किया। उसने अपने कमरे की बत्ती को नहीं जलाया, अँधेरे में ही टटोल कर अपने बिस्तर को जैसे-तैसे फैला लिया। जलाल पुराने दिनों की बातें सोचने लगा।

....तब कारखाने का फसाद घरेलू हो गया था। उसके बाप का लाइन सरदारी से फिर ताँत पर वापस आ जाना और रहीम सरदार के चचेरे भाई का लाइन सरदार हो जाना—उसके और रहीम सरदार के

खानदानी झगड़े का कारण बन गया था। देखते न देखते एक दिन लाइन की छतों के ऊपर से हजार-हजार पत्थरों की बरखा होने लगी थी। लाइन की पथरीली ऊबड़-खाबड़ सँकरी गलियों में डेढ़ घंटे तक लाठियाँ चलती रहीं। सैकड़ों आदमी दौड़-दौड़ कर एक-दूसरे का सिर तोड़ते रहे। दर्जनों घायल हो अस्पताल गये। जलाल के बाप के दल का एक आदमी मारा गया, रहीम सरदार जेल गये और उनकी जमानत रुक गयी।

""कहाँ मरियम से जलाल की शादी होने की बात चली थी और कहाँ वह कोर्ट में अर्जी देने चली कि जलाल ने उसे जबरन बेइज्जत किया है। नाबालिग के साथ रेप केस—भयानक होगा। कहाँ छिप-छिप कर प्यार! कहाँ सब कुछ, सब तरह से दे डालने का वादा और कहाँ रेप-केस!

"" अपने-बेगानों से अलविदा कह कर जलाल कोर्ट में हाजिर हुआ। मगर…सुबह से शाम हो गयी। रहीम सरदार के पैरवीकार दौड़ते रहे। उनके वकील, मोख्तार हाथ में मसौदे का कागज लेकर कचहरी के बरामदे में चहलकदमी करते रहे। मगर मरियम नहीं आयी। …कई दिनों के बाद उड़ती-उड़ती खबर आयी कि मार-मार कर मरियम की हड्डियाँ चूर-चूर कर दी गयी हैं, कमर तोड़ दी गयी है। हाथ-पाँव बाँध कर उसे मुर्गी के दरबे में डाल दिया गया है।

""कई दिन बाद रात के सन्नाटे में जान की बाजी लगाकर वह मरियम से मिलने गया था। मगर""मगर मरियम फुफकार उठी थी, 'भागो, नहीं तो जान मरवा दूँगी। मेरा बाप जेल में है""'

लेकिन अब कहने-सुनने को बचा क्या है।

""उस रात सुबह होने तक माघ के बादल जोर-जोर से बरस पड़े थे। पता नहीं, जलाल सुबह छ: बजे लेबर आफिस के गांगुली बाबू के पास पैरवी के लिये गया था या नहीं। किन्तु शाम को चायखाने की बेंच पर बैठ कर वह मरियम की बेटी को बिस्कुट खिला रहा था। ✶

सर्द हवाएं

★

जाड़े की रात बिताये नहीं बीतती। हम तुम साथ हैं। बरस भर बाद मिले हैं। रात-रात भर जागते हैं। बातें कम कर पाते हैं। एक-दूसरे को देखते हैं। कभी दोनों मिलकर अपनी बच्चो को देखते हैं; जो हमारे बीच निश्चिन्त हो कर सोयी होती है। रातें लम्बी होती जाती हैं। मालगाड़ी के डिब्बों की तरह दस, ग्यारह, बारह, एक....रात रेंगती है। क्रासिंग पर खड़े राही की तरह हम अटके रह जाते हैं।

सारा गाँव आठ बजते ही सो जाता है। शाहिदा जागती रहती है। राम सिंह के घर से लौटते हुए प्रताप जोर-जोर से बातें करता है। वह अपने खद्दर की चादर गर्दन में लपेटे होता है। प्रताप की बातों का जवाब नहीं मिलता। उसकी उत्तेजना बिना जवाब के ही धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। हम खेतों से होकर गुजरते हैं। बहुत शबनम गिर रही है। हमारे कपड़े ठंडे होने लगते हैं। पाजामों के छोर भींग जाते हैं। प्रताप अपनी चादर से मुझे भी ढँक लेता है। एक ही बीड़ी से हम बारी-बारी कश लेते हैं। अँधेरी और ऊबड़-खाबड़ राहों पर

हम चलते हैं—जिसका मुझे कोई अन्दाज नहीं। प्रताप सधे पाँवों से चलता है, मुझे भी चलाता है।

चमार टोली से हम गुजरते हैं, वहाँ की झोपड़ियाँ हर तरफ से बन्द हो गयी होती हैं। दरवाजे के अलाव ठंडे हो गये होते हैं। किन्तु अभी भी गर्म पड़ी राखों पर कुत्ते सोये होते हैं। हमारी आहट पर कुत्ते सिर उठा कर देखते हैं, फिर सो जाते हैं, कुछ बोलते नहीं।

मुझको मेरे दरवाजे तक लाकर प्रताप छोड़ जाता है। वह बिल्कुल चुपचाप ही मुझ से विदा लेता है। गहरे अँधेरे की तरह ही उस पर चुप्पी छा गयी होती है। मैं सीढ़ियों से बरामदे पर चढ़ता हूँ। किवाड़ों को थपथपाता हूँ। पल्ले हट जाते हैं। मैं और भी गहरे अँधेरे में डूब जाता हूँ। बीच आँगन में खड़े हो कर देखता हूँ, आँगन अँधेरे के सन्नाटे में सायँ-सायँ करता होता है। अन्दर के सब दरवाजे बन्द होते हैं।

मैं अपने कमरे की ओर बढ़ता हूँ। दरवाजे पर थोड़ी देर के लिए ठमकता हूँ। देखता हूँ—अंदर से रोशनी की पतली लकीर बाहर आ रही है। मैं अपनी उँगलियों से हल्का दबाव देता हूँ और दरवाजा खुल जाता है। शाहिदा बिस्तरे से ही सिर घुमा कर मेरी ओर देखती है। मैं उस पीली-सी पिघली रोशनी में देखता हूँ—उसकी नजरों में शंका से भरी हुई जिज्ञासा है। उसकी पुतलियां नाचती नहीं, पलकें झपकतीं नहीं, खाली कटोरों में बहुत-बहुत प्यास भर कर वह एक टक देखती है। मेरी ओर से कोई जवाब न पा कर धीरे से वह अपनी गर्दन मोड़ लेती है। उठ बैठने का उपक्रम करती है। बिस्तर हिलता है। बच्ची कुनमुनाती है। मैं धीरे से बिस्तर के नजदीक जा कर बच्ची के ऊपर झुक जाता हूँ। चारपाई पर हथेली टिका कर मैं झुका रहता हूँ। शाहिदा तकिये पर केहुनी टिका कर अपनी ठुड्डी हथेली

में भर लेती है। तिरछी लेटी बच्ची पर झुक आती है। रजाई के खिंच जाने से बच्ची की नन्हीं पेशानी कांप जाती है जैसे—खिले गुलाब के गुच्छे पर सुबह की हवा थर्रा गयी हो।"' मैं शाहिदा के चेहरे की ओर देखता हूँ। उसकी बोझिल-सी लग रही बड़ी-बड़ी पलकें एकाएक झपक जाती हैं। वह बच्ची की पेशानी को उँगली से छूती है। मैं सीधे खड़ा हो जाता हूँ।
कितनी देर के बाद शाहिदा के कंठ से आवाज फूटती है—'कभी चादर ले कर नहीं जावे—मैं रोज कहती हूँ। शाम होवे ही दुआर पर चादर भेज देती हूँ। फिर भी छोड़ कर चले जावे है।' मैं कुछ जवाब नहीं देता। मुस्कुराने की कोशिश करता हूँ। चारपाई पर बैठ जाता हूँ। वह मेरी देह पर चादर डाल देती है। खाना लाकर मेरे सामने रखती है। भात पर एक मिर्च रख देती है। मेरे सामने चारपाई पर बैठ जाती है। भात को अपनी उँगली से छूती है। बर्फ! एक ही साथ उसके चेहरे पर तमतमाहट और शिकायत दोनों उभरती है।
जैसे बात बदलने के लिए ही मैं कहता हूँ, 'आज हवा बहुत तेज और सर्द है।'
हम दोनों बिस्तर पर रजाई के अन्दर चले जाते हैं। अब वह निश्चिन्त हो कर; किन्तु शंकित नजरों से मेरी ओर देखती है। मैं धीरे धीरे बीड़ी का कश लेता हूँ। मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि शाहिदा आज की कोई नयी खबर जानने की उत्सुकता, उत्सुकता से अधिक भय से मेरी ओर देख रही है। अब मुझको निश्चय ही कुछ कहना चाहिए। शाहिदा रजाई के अन्दर अपनी देह थोड़ा-सा मोड़ती है। गर्म साँस का फौव्वारा मेरी गर्दन के रोयें पर छितरा जाता है। फिर धीरे-धीरे साँसों की आवाज बेमालूम-सी हो जाती है। कुछ देर बाद मैं सिर घुमा कर देखता हूँ—देखने को तो वह मेरी ओर ही देख रही है मगर उसकी आँखों का आकाश कहीं गहरी उदासी में खो गया है। मेरी कमीज के

कालर को उसने दाँतों से दाब लिया है, अपने सीने पर पड़ी शाहिदा की कलाई में धीरे से हिला कर कहता हूँ, 'इतना उदास होने की कौन-सी बात आ पड़ी है।'

शाहिदा शरमा जाती है। कालर के छोर को दाँतों से छोड़ देती है, तकिये पर कुछ और ऊपर सरकते हुए कहती है, 'आज शाम को दो हवाई जहाज इधर से उड़ कर उधर गये।' रजाई से अपना हाथ निकाल कर वह पश्चिम से पूरब की ओर इशारा करती है। "गाँव भर के लोग देख रहे थे।"

"इसमें देखने की कौन-सी बात थी? हवाई जहाज तो रोज उड़ा करते हैं।" मगर इस दलील के खोखलेपन से मेरी आवाज स्वयं लरज जाती है। शाहिदा समझती है कि जब तक हवाई जहाज पश्चिम से उड़कर पूरब की ओर जाते रहेंगे, तब तक मेरी गिरफ्तारी का खतरा बना रहेगा। क्योंकि ये जहाज सरहद पर लड़ाई के लिये जा रहे हैं और सरकार यह समझती है कि भारत-चीन के सीमा-युद्ध से मेरा भी सम्बन्ध होना चाहिये।

शाहिदा चुप हो जाती है। मैं उसकी ओर देखता हूँ। इसी बीच बच्ची चिहुँक कर जग जाती है। शाहिदा अपने को बच्ची की ओर कर लेती है। बच्ची की पीठ पर थपकी देते हुए उसे फिर सुलाती है। चारपाई धीरे-धीरे हिलती है। मेरी देह से रजाई खिंच जाती है। मगर मैं उसी तरह पड़ा रहता हूँ। बाहर कुत्ते भूकते हैं। सिधवलिया सुगर फैक्टरी में ईख ले जानेवाली गाड़ियाँ लौट रही हैं। मेरे घर के नजदीक से ही सड़क गुजरती है। कोई गाड़ीवान विलाप के स्वर में कुछ गा रहा है। उसकी आवाज अस्पष्ट है। शायद चादर से मुँह ढंके हुए है। बाहर हहराती हुई सर्द हवा चल रही है। ग्यारह का भोंपू बजता है। इसी वक्त रेल भी गुजरती है। लगता है, इस सन्नाटे में थोड़ी देर के लिए एक शोर-शराबा उठ कर खत्म हो गया है।

शाहिदा उठ कर बाहर जाती है और जल्द ही सीः-सीः करती हुई वापस चली आती है। दाँत कटकटा कर वह जाड़े की शिकायत करती है। चिराग की लौ पर जम आयी पपड़ी को उँगली से हटाती है। पाँचेक मिनट ही बाहर रह जाने के बाद मिर्च की तिताई की तरह सुसुवाहट उसके मुँह से निकल रही है। आले पर रखी केतली को हाथ में उठा कर वह कहती है, 'अब चाय गरम कर लाऊँ ?'

'अभी नहीं !'

'हाँ अभी क्यों, तीन बजे न ! ' वह तमतमा जाती है।

मैं कहता हूँ, 'तब शायद जरूरत ही न रह जाय। घर भर की तमाम आग बुझ गयी रहेगी।'

वह केतली छोड़ कर मेरे ऊपर झुक जाती है। 'ऐसा क्यों कहते हैं! मैं कहीं से भी आग लाऊँगी। ऐसी रातों में मैं आग बहुत बचाकर रखती हूँ।' शाहिदा रजाई के अन्दर फिर चली आती है। तकिये के नीचे से मफलर निकाल कर मेरे गले में लपेटते हुए कहती है, 'पता नहीं, यह किस दिन-रात के लिये है, कभी तो इसे बांधते नहीं !'

मैं उसकी बातों को तरह दे जाता हूँ। उसके चेहरे को अच्छी तरह अपनी ओर घुमाकर कहता हूँ, 'तुम्हें कोई चिन्ता है, जिसे तुम कहती नहीं।'

'आप रोज रात को सबके सो जाने पर आते हैं। कुछ कहते नहीं। मुझे लगता है—किसी दिन अचानक ही कहेंगे—आज चार बजे कलकत्ता लौट जाऊँगा।'

शाहिदा तकिये में सिर गड़ा लेती है। मेरी बहुत कोशिश के बाद भी सिर नहीं उठाती। मैं उसके जूड़े में उँगलियां चलाते हुए जूड़े को ढीला कर देता हूँ। कुछ देर में उसकी कँपकँपाहट खत्म होती है। तकिये से सिर उठा कर वह मेरे कंधे पर रख देती है। कहती है, सबेरे सब मुझसे पूछेंगे। मैं कुछ नहीं बता पाऊँगी। आठ बजे प्रताप भैया चाय पीने

आयेंगे तो बतायेंगे—कल क्या खबर मिली ? लड़ाई का हाल क्या है। आप कब कलकत्ता जा रहे हैं? घर भर के लोग उनको घेर कर बैठेंगे। मैं भी पल्ले से सट कर खड़ी होऊँगी। ''''खबर तो वे ही सुनाते हैं। ''''और इधर किरण जब निकल आयेगी, सब लोग जग जायेंगे, तब आपको नींद आयेगी।

जाड़े की लम्बी रात बीतती जा रही है। नींद नहीं आती। गांव के कुओं पर एक-दो बाल्टियों की खनखनाहट भी हो रही है। सिघवलिया जाने वाली गाड़ियों की आहटें भी आ रही हैं। शाहिदा बिस्तर से उठ कर जाना चाहती है। मैं उसे बाँहों में दाब कर रोकता हूँ, नहीं मुझे चाय नहीं चाहिए।'

''मैंने आपको कभी नहीं रोका है, कुछ भी करने से नहीं ! लेकिन आपको कुछ हो न जाय, यह फिक्र करने का हक तो मुझे है।''

वह मेरे बालों को उँगलियों में लपेट कर खींच रही है। कहती है, 'अब तो सबेरा हुआ, न सोये, इससे क्या, अब तो उठिये।'

हमारे हिलने-डुलने से बच्ची जाग जाती है। शाहिदा बच्ची की ओर घूमकर उसे थपकी देती है। मगर बच्ची अब सोने का नाम नहीं लेती। मैं सिर उठाकर बच्ची को देखता हूँ—वह बड़े शकून से दूध पी रही है। उसकी आँखों में नींद का कहीं नामो-निशान नहीं। शाहिदा कहती है, 'बहुत सबेरे से सोयी है, अब नहीं सो सकेगी।'

शाहिदा बच्ची को उठा कर हम दोनों के बीच में सुला देती है। हम दोनों बच्ची को ओर देखते हैं। वह रजाई के अन्दर हाथ-पांव फेंक कर खेल रही है। उसके चेहरे पर गजब की मुस्कराहट है। □□

अधूरी कथाएँ

★

जिन्दगी फुटपाथों की !

भला किसे इतनी फुसरत है कि कथा कहे और कोई सुनने को भी तैयार हो। गैर सिलसिलेवार बातों के बीच जंजीरहीन कड़ियों की तरह कथाएँ निकलती हैं और खैनी या पान के थूकों के साथ फुटपाथों पर फेंक दी जाती हैं। किसी भी पूर्णता के पहले ही किस्सा-गो को नींद आ जाती है या हुँकारी भरनेवाला श्रोता हुँकारी भरना छोड़ गया होता है। जिज्ञासाहीन कथाएँ अधूरी होती हैं।

'बदबू आती है।'

'यह तुम्हारी बहुत खराब आदत है। वह आदमी इतनी दूर है, फिर भी बदबू आती है। या सिर्फ उसे देखने भर से बदबू आने लगती है ? सूँघते नहीं, बल्कि आँखों से बदबू देखते हो। हद है !' बुजुर्ग रिक्शावाला फुटपाथ की सेज पर नया-नया गाँव से आनेवाले छोकड़े को फटकारता है। लड़का, चचा कथा कहो की आदत गाँव से लेकर आया है। कथा न सही, कुछ भी सही, हर बात को खोद-खोद कर पूछता। चचा की फटकार पर शरमा कर आँखें ढँक लेता है। मगर नाक उघाड़ रखता है, जिससे यह मालूम हो जाय कि उसके पास भी बदबू

नहीं आती। पिल्ले का मरियल-सा बच्चा रिक्शेवाले लड़के के पाँव के पास से लुढकता हुआ धीरे-धीरे गुजरता है। लड़का सर उठा कर पिल्ले के बच्चे की ओर देखता है और सोये-सोये ही पाँव बढ़ा कर पिल्ले के बच्चे को दाब लेता है। पिल्ला सिर्फ एक बार कांय करता है। फिर बिलकुल चुप हो जाता है। शायद भय से ऐसा करता है या आराम और दुलार जान कर, मगर कुछ ही देर के बाद जब लड़का यह सोच लेता है कि पिल्ला बदबू के पास से आ रहा है, तब वह उसे ढकेल देता है। पिल्ला पें-पें करता हुआ फुटपाथ से नीचे चला जाता है। बुजुर्ग रिक्शावाला गुर्राता है और लड़का मुँह घुमा कर सो जाता है।

यह कभी का चोर और आज का फ़कीर गीत की एक ही कड़ी क्यों गाता है—'आज काशी में मेरा कोई खरीदार नहीं!' घंटों दुहराये जाता है। *लेकिन तब, अब नहीं।*

रिक्शा खींचने के लिये देहातों से नये-नये आनेवाले लडके को, जिसका नाम करीमन है, चायखाने का नन्हा-सा छोकड़ा फायटिंग पिक्चरों की डिग-डिग, डिग-डिग-ढोंय—कथाएँ सुनाता है और चायखाने के मालिक की पुकार पर भाग जाता है, कथाएँ अधूरी छोड कर। करीमन सुबह-सुबह एक-दो घंटे ट्रेनिंग में रिक्शा खींचने के बाद लौट आता है। अभी उसे रिक्शा लेकर दौड़ने की 'चाल' सिखायी जाती है। फिर वह *गैस-बत्ती के खम्भों से सट कर, या घरों की सीढियों पर या कभी-कभी* चायखानों की बेंच पर बैठा रहता है। दिन में भी उसे नींद आती है। मगर सोने को जगह नहीं मिलती।

फिर रात आती है। जिन्दगी वापस आती है।

रात ग्यारह से अधिक बीत गयी है। इस मुहल्ले के रिक्शे और घोड़ा गाड़ियाँ वापस आने लगी हैं। एक-दो टैक्सियाँ आखिरी सवारियाँ छोड़ कर लौट रही हैं। रिपन स्ट्रीट के दोनों फुटपाथों को बोरे से

पोंछ कर साफ किया जा रहा है। फुटपाथों के निवासी अपने बिस्तरों को सारंगी की तरह कांखों से दबाये आ रहे हैं। अब कुछ ही देर में इस रात की आखिरी सरगर्मी खत्म हो जायगी और अगर फकीर गाता हुआ न निकला तो लगेगा कि कुछ अधूरा रह गया। मगर फकीर गाता हुआ निकलेगा ही। शायद रात के पहरुए की तरह फकीर की आवाज ही आखिरी आवाज होगी। वह होटलों के सामने कुछ-कुछ देर के लिये रुकता चलेगा। वेलेस्ली से सरकुलर रोड तक रिपन स्ट्रीट को पार करते हुए फकीर के हाथों में एक दर्जन रोटियाँ होंगी।

फकीर अंधा नहीं है। मगर उसकी चाल में अंधेपन का अन्दाज है। हाथ की छड़ी को थाह-थाह कर वह आगे बढ़ायेगा और इस अन्दाज में उसके पाँव उठेंगे, जैसे वह घुटने भर पानी में चल रहा हो। गीत की एक ही पंक्ति बस्ती के ऊपर से गुजरती हवाओं के साथ गुजरती रहेगी। फकीर जब बैपटिस्ट मिशन की ओर मुड़ेगा तो फुटपाथ पर बैठे कुत्ते की बेचैनी बढ़ जायेगी। कुत्ता अपने नाखूनों को फुटपाथ के पत्थर पर घसीटता हुआ पीछे हटेगा। पीछे हटता हुआ वह किसी आदमी की देह पर आ जायेगा। वह पहले से तैयार बैठा आदमी ईंट के एक बड़े टुकड़े से कुत्ते पर भरपूर वार करेगा। फिजां को कँपा देनेवाली चीख कुत्ते के गले से निकलेगी। वह लुढकता हुआ रास्ते पर चला जायगा।

बहुत रात बीत गयी होगी। लोग सो गये होंगे। रास्ते के एक किनारे सुनसान में फकीर गठरी बना पड़ा रहेगा। दो-तीन कुत्ते उसके पास होंगे। वे भी प्रायः आधी नींद में होंगे। वे हिलेंगे-डुलेंगे नहीं। तन्दूरी रोटियों के टुकड़े बिखरे होंगे, जिन्हें कुत्तों ने भी छोड़ दिया होगा।

आज कई दिनों बाद रोटी के उन्हीं टुकड़ों को फकीर रास्ते से उठा कर तोड़ रहा था। मगर नहीं तोड़ सका था। उसके दाँत टूट गये हैं। उसने टुकड़ों को पानी में भिगो कर कपड़े पर डाल रखा था। चाय-खाने के छोकड़े ने उधर से गुजरते हुए बिलकुल अनजान बन रोटीवाले

कपड़े को पाँव से ठुकरा दिया। मगर फकीर ज्यों-का-त्यों रहा। करीमन से यह देखा नहीं गया। उसने छोकड़े को दो चाँटे लगाये। छोकड़ा हक्बक रह गया। करीमन भी जब फकीर के खिलाफ है तब उसे क्यों मारता है और यह पगला रोटी ठुकराने पर खुद क्यों नहीं बोलता।

फकीर पागल हो गया है। रोटियाँ माँगने नहीं जाता। दिन में जब बहुत तेज धूप होती है तो वह पेड़ के साये में खिसक जाता है। उसका जख्म रिसता गया है। उससे बदबू आती है। आसपास मक्खियों का रेला होता है। फुटपाथ के निवासियों ने उसे कई बार इधर से उधर खदेड़ा है। वह बिना किसी प्रतिवाद के सरकता गया है। अब वह कचरे के ढेर तक चला गया है। अब कुत्तों ने भी उसका साथ छोड़ दिया है।

रिसते घावों की बदबू जब भी नजदीक होती है, फुटपाथों के निवासी कभी मुलायम, कभी निर्मम हो उसे दूर ढकेल आते हैं।

करीमन पाकेट से एक मुड़ी हुई किताब निकालता है। ठेला-खिचवा की इस गीत-कथा के पीछे के कुछ पेज खत्म हो गये हैं। वह जोर-जोर से गाता है। फुटपाथ पर सोये हुए रिक्शेवाले खिलखिलाते हैं। ठेला-खिचवा के बीमार होने पर उसे घोड़े की दवा दी जाती है। वह अस्तबल या जानवरों के अस्पताल में भेज दिया जाता है। करीमन चुप हो जाता है। यह खिलखिलाहट उसको समझ में नहीं आती। देहात में उसने सुना था कि रिक्शा-खिचवा को भी घोड़े की दवा दी जाती है। बारिश आती है। लोग बिस्तरा लेकर भाग खड़े होते हैं।

बूढ़ा रिक्शावाला फिर सबसे पहले फुटपाथ पर आते हुए कहता है,'बंगाल की बारिश क्या! आयी, लटकी, गयी। आधी फुहार में लोग काम करते रहते हैं। आधी फुहार में लोग फुटपाथों पर चले जाते हैं।

करीमन अब कुछ और गुनगुनाता है। शायद फकीर की पंक्ति—
'राजा हरिश्चन्द का गीत गाता था।'

करामन ने शायद फकीर के गीत के विषय में पूछा है।
एक ही साथ कई आवाजें आपस में टकराती हैं।
'फकीर नहीं, पागल!'
'पागल नहीं, चोर!'
गीत से हरिचन्द का भेद खोज निकालनेवाला बुजुर्ग क्या कहता है,
कहता है, जाड़े की वह शाम थी। उस दिन कलकत्ते पर कुहरा घिरा हुआ था। जैसे आज बदली है। लेकिन फुटपाथ इस तरह भीगा नहीं था। कई आदमी एक ही साथ हँसते हैं। उस दिन चौरंगी में भीड़ काफी थी। लोग आपस में सटकर चल रहे थे। देशी, विदेशी हर तरह के साहब चौरंगी में घूम रहे थे।
ठीक मेट्रो के सामने एक आदमी चादर ओढे खड़ा था। उसके पास एक कुत्ता था। उसने कुत्ते के बच्चे को चादर में छिपा रखा था। जब साहब लोग उसके पास से गुजरते तो उन्हें गौर से देखता और किसी एक के सामने पिल्ले को कर देता। अगर कोई साहब दिलचस्पी दिखाता तो वह कुत्ते को अच्छी तरह साहब के सामने कर देता। और कहीं साहब आगे बढ़ जाता तो कुत्ते को कांख में दाब लेता।
उसे खड़े-खड़े एक घंटा बीत गया। अब वह घबड़ाने लगा था। जाड़े में भी उसके चेहरे पर कभी-कभी पसीना आ जाता था। अन्त में एक मोटे से देशी साहब को देख कर उसने कुत्ते को अच्छी तरह उसके आगे कर कर दिया। जैसे साहब की गोद में डाल देगा। साहब ठमक गया।
'लीजिये साब! असली कुत्ता है।'
कुत्ता साहब की ओर बेबस नजरों से देखने लगा। उसकी आँखें मोम जैसी हो रही थीं। किन्तु कुछ ही क्षण बाद कुत्ते ने मुँह बा कर जम्हाई ली और जीभ निकाल दी। उसकी गर्दन के सुनहले बाल जाड़े की ठंडी हवा के कारण खड़े हो गये। लगता था, कुत्ता कांप रहा है।

लेकिन असल में कुत्तावाला आदमी कांप रहा था। फिर उस आदमी ने कोर्निश के स्वर में कहा, 'साब!'

साहब ने कुत्ते के सर पर हाथ रख दिया। 'कितने में बेचोगे?'

'सिर्फ पच्चीस रुपये सर!'

साहब जो अब तक कुत्ते की ओर देख रहा था, कुत्ते वाले की ओर देखने लगा। 'क्या कहा?'

'पच्चीस!'

साहब उस आदमी को गौर से देखता रहा। फिर उसने कुत्ते को अच्छी तरह छू कर देखा। उसके बालों में उँगलियाँ चला कर देखा। फिर कहा—तुम्हारा कुत्ता असली नहीं है।

'कसम ले लें साहब! मैं इस कुत्ते को खानदान-दर-खानदान से जानता हूँ। यह कई पुश्त से विलायती है। अलसेशियन! इसके माँ-बाप विलायती थे। बिल्कुल मिलावट नहीं।'

'ठीक से दाम बोलो।'

'बिल्कुल ठीक कहा। यह कुत्ता बाजार में आपको दो सौ से कम में नहीं मिलेगा।'

'लेकिन तुम्हें प्योर अलसेशियन मिला कहाँ से? झूठ बोलता है।'

उस आदमी के चेहरे पर थोड़ा तनाव आया। उसने चौरंगी की भीड़ में सर उठा कर दोनों तरफ देखा। फिर साहब से सट कर बिलकुल धीरे से कहा, 'सच कहता हूँ, एक मेम साहब का चोरी कर लाया हूँ। गरीब आदमी हूँ सरकार! भूखों मरता हूँ। माफ कर दीजियेगा।'

साहब दो कदम पीछे हटा। कोट की जेब में हाथ डालते हुए उसने कहा, 'कहो तो पाँच रुपये दे दूँ।'

'देखिए सरकार! इन्साफ कर के कहिये। गरीब आदमी को दो रुपये ज्यादा…'

मगर साहब सुनने को तैयार नही हुआ। आगे बढ़ गया। कुत्तावाला गिड़गिड़ाता हुआ कई कदम तक पीछे-पीछे गया। मगर साहब लौटकर देखने को तैयार नही हुआ। कुत्तावाला कुछ देर तक ठहरा जरूर मगर उसने और किसी को कुत्ता नही दिखाया। साहब उत्तर की तरफ गया था और वह दक्षिण की तरफ चलने लगा। अभी वह कुछ दूर ही गया था कि एक पुलिस ने उसकी गर्दन पकड़ ली।

पहले तो उस आदमी ने अपने दोनों हाथों को बाहर निकाल कर दिखा दिया, 'सिपाही जी, मेरे पास कुत्ता नही है।'

सिपाही ने उसकी बाँह पकड़ कर खींच दी। पिल्ला जमीन पर गिर कर कायें-कायें करने लगा। साहब ने लपक कर कुत्ते को उठा लिया। उसकी पीठ पोछने लगा। बस, बस, यही है। मेरा कुत्ता! साला चोर!'

पिल्ले को चोट लग गयी थी और वह पें-पें किये जा रहा था।

....अन्धड़ के बीच लोग बिस्तरा समेटते हैं। टिप-टिप बूंदें शुरू होती हैं। सच ही, कथाएँ अधूरी रह जाती हैं। लोग बिस्तरा ले कर दुकानो की पटरियों और कोठियों के पायदानों की ओर दौड़ते है। लेकिन करीमन से रहा नही जाता। वह अपने सर को बिस्तरे से ढँकते हुए पूछता है, 'तब क्या हुआ चाचा?'

लेकिन उसके बाद भी कुछ होता है, या जो होता है, उसे कहने की जरूरत रह जाती है, यह रिक्शेवाले नही महसूस करते। अधूरी कथाओं को आगे बढ़ाने की फुरसत उन्हें नहीं है। फिर कोई नयी बात देखकर आयेंगे तो कहेंगे।

दुकान की पटरी पर लोग खड़े हैं। बूँदों की बौछार उन तक आती है। उनके कपड़े को भिगो जाती है। रिसते घाव की बदबू वहाँ भी है। तेज और साफ हवा में, बारिश की हवा में बदबू का आना अचरज है। चाहे वह घाव जितना भी करीब क्यों न हो। टुकड़ों से ढँका फकीर वहीं

मुस्कान

★

शाम आयेगी।

कारखाने के गेटों पर, दीवारों पर पोस्टर चिपक जायेंगे। लाउड स्पीकर के माउथपीस से हवा में उछलेंगे। जुलूस, लम्बी कतारें, दोनों तरफ खड़े लोग, घरों के छज्जों पर औरतें और बच्चे। फिजा को कँपाते नारे—'फेसुए को नागिन वापस जाओ!' घेराव, बैठकी हड़ताल, फिर पूरी हड़ताल।

यह सब होगा मेरे लिए, रंगलाल सोचता है और सिहर उठता है। कृतज्ञता और अपनत्व से आत्म-विभोर है।

सुबह से कई घंटे बीत गये। रंगलाल बैठा है। वह बेचैनी अब उसमें नहीं है, जो कल शाम से थी।

लोग उससे पूछते हैं—"तुमने चार्जशीट का क्या जवाब दिया?"

"वह तो यूनियन बाबू जानें। मैंने तो कागज भेज दिया था—" वह कहता है।

रंगलाल बारह बजे दिन को कारखाने में जाता है। कुछ देर इधर-उधर घूमता है। फिर कैन्टीन की ओर बढ़ जाता है अकेले। कैन्टीन का

फर्श ठंडा होगा। वह उस पर कुछ देर लेटेगा, जैसा कि वह आमतौर पर करता रहा है।

किन्तु उसे कैन्टीन के दरवाजे पर ही ठमक जाना पड़ता है। लोहे के पल्लों को पकड कर वह, कई क्षण तक खड़ा रहता है। दाहिने हाथ की सबसे छोटी उंगली के नाखून को दाँतों से कुतर-कुतर कर कुछ सोचता है। फिर पीछे की ओर मुड़ना चाहता है। मगर मुड़ नहीं पाता। कोई उसकी गर्दन पकड़ कर दरवाजे के अन्दर कर देता है।

"चलो, लौटते क्यों हो ?"—वह आदमी कहता है।

रंगलाल उस आदमी की ओर गौर से देखता है। वह आदमी मुस्कुरा रहा है। गर्द में दबे, सूखे पत्ते पर गुजरती हवा जैसा रंगलाल का चेहरा काँपता है।

"सोचता हूँ, कैन्टीन इन्चार्ज भी तो मेम साहब हैं।" उसकी आवाज अनायास ही कातर हो जाती है।

"है, तो हुआ करें," वह आदमी लापरवाही से जवाब देता है। फिर चुपचाप रह कर, रंगलाल की ओर देखता, फिर उसकी पीठ पर हाथ रखता है। "तुम सोचते हो, कि सिर्फ नौकरी ही नहीं जायगी, बदनामी भी होगी। सच ही घबरा गये हो, क्यों ?"

रंगलाल सच ही घबरा जाता है। वह उस आदमी की ओर अनटिकी दृष्टि से बार-बार देखता है। कुछ समझ लेना चाहता है। मगर कुछ भी पकड़ में नहीं आता। फिर गहराई को थाहती-सी आवाज में वह कहता है—"लाइन घूमती कहीं वह आ न जायँ।" वह माथा खुजलाता है।

रंगलाल की बाँह खींचकर बेंच पर बैठाते हुए, वह आदमी कहता है, "मेम साहब इतनी बड़ी भुतनी हैं ?"

इस बार रंगलाल भी हँस पड़ता है।

वह आदमी रंगलाल की ओर मुस्कुराती नजरों से देखता है। रंगलाल को उन नजरों में आड़े, तिरछे, खड़े, कई सवाल दिखते हैं। वह कुछ

सम्भल जाता है। "भाई, यही हंसी तो जान मार गयी है। क्यों आती है—अब भी ?"

"हंसी जो है। आये गी ही।" वह आदमी अब भी, मुस्कराये जाता है। रंगलाल कुछ नहीं बोलता।

कैन्टीन से निकल कर, वह आदमी भी रंगलाल के साथ चलता है।

"तुम कुछ कहो न। मुझसे कहो।"—वह आदमी उससे कहता है।

इस बार रंगलाल भरपूर नजरों से उस आदमी की ओर देखता है। "आप बता सकते हैं कि लालचन काका को चार्जशीट क्यों नहीं मिली ?"' मिलनी तो उन्हें ही चाहिए थी।" और आहत स्वाभिमान की स्मृति से उसकी आवाज थर्रा जाती है।

"पागल हुए हो ? मेम साहब यह कैसे कहतीं, कि बुड्ढे ने मेरे गाल पर मूँछें सटा दी थी। उसके मुंह का गन्दा थूक मेरे होठों पर छितरा [illegible] था। लिहाजा बिलकुल सस्ता तरीका था—"यह नौजवान [illegible] मुझको देख कर हंसा।"

रंगलाल कोई जवाब नही देता।

वह सिर्फ चलता रहता है। वह आदमी रंगलाल का कंधा हिलाता है।

"बोलो।"

"कुछ नहीं।"

"एक बात है।"

"क्या ?"

"चार्जशीट का कागज मुझे भी दिखा [illegible]। [illegible]।"

"पता नहीं।" रंगलाल शंकित होता है।

"घबराओ नही। नौकरी की कोई [illegible]।"—वह आदमी फिर लौट कर रंगलाल का कंधा [illegible] है।

"बस क्या ?" वह आदमी [illegible] जाता है।

रंगलाल खड़ा होकर उसका जाना देखता है। फिर खँखार कर अपना गला साफ करता है और क्वार्टर की ओर बढ जाता है।

यह मार्च महीने की मरी दोपहरी है। सेमल के फूटे कोओं जैसा आकाश साफ है। रंगलाल नहाने के लिये चहारदीवारी फाँद कर, तालाब के अन्दर चला जाता है। एक बज गया है। मगर उसने खाना नहो खाया है। तालाब खाली है। उसे यह अच्छा लगता है। वह सेमल के पेड़ के नीचे बैठ जाता है। सेमल के सूखे से लगते पेड़ की डालियों में लिपटी कुहरी की झीनी-झीनी छाया। कभी धूप भी उस पर पड़ती है। हवा का गोल-गोल झोंका चहारदीवारी के अन्दर आता है। तालाब का पानी काँपता है। एक सूखी सिहरन रंगलाल तक आती है। चिमनी के धुओं को चैती हवा दूर-दूर तक हुगली के उस पार उछाल आती है। चन्दन-नगर। बाबुओं की बस्ती पर राख बरसती होगी।

तालाब में तीन-चार छोटे बच्चे हैं। वे सेमल के तोकों को तोड़ने के लिये रंगलाल के पास ही खड़े होकर लग्गी सरका रहे हैं। वह उनकी ओर ध्यान नहो देता। लेकिन बच्चे अपनी ओर उसका ध्यान खींचना चाहते हैं। वे उससे सेमल के तोके तोड़ देने को कहते हैं। वह ऐसा नहीं करता। बच्चे अकारण ही उसके पास खड़े रहते है। उनसे तोके नहीं टूटते। इसलिए अब वे कोशिश भी नहीं करते। चुपचाप रंगलाल के पास खड़े रहते हैं। उसने इन बच्चों को कभी भी नहो देखा है। होंगे इसी शहर के किसी कोने के।

डेढ़ का भोंपू बजता है। बच्चे भाग खड़े होते हैं। वह सोचता है, 'इनके बाप-भाई कारखाने से अब आयेंगे, इसीलिये।'

वह कपड़ा उतार कर, तालाब में उतर जाता है। गर्दन तक जाता है। शान्त पानी में अपनी हथेलियों को फैलाकर देखता है। आज उन पर कालिख नहो है। उसे बड़ा अजब लगता है। वह डुबकी लगाता है और दोनों हाथों में पाँक लेकर ऊपर आता है। पाँक को वह कन्धे,

गर्दन, छाती और कमर पर रगड़ता है। इससे देह की चुनचुनाहट दूर होती है। यह उसके बाप का नुस्खा है।

तालाब से निकलते हुए, उसे याद आती है जनवरी की वह दोपहरी। तालाब भरा था। लोग कपड़े धो-धोकर फैला रहे थे, नहा-नहा कर धूप सेंक रहे थे। पूरा एक अर्धउलंग मेला था। और अचानक ही नई-नई आने वाली मेम साहब की चर्चा छिड़ गई थी।

लालचन ने बड़ी संजीदगी से कहा था—"तुम लोग जिसे खूबसूरत गुड़िया कहते हो, वह नागिन साबित होगी। कसूर उसका नहीं। उसके जबड़ों में जहर भरा जा रहा है।"

लालचन के अनुभव को सभी मानते हैं। वह कहा करता है, कि "तीस वर्ष पहले एक साहब ने ही मुझको ट्रेड यूनियन बनाने, पार्टी में शामिल होने और मालिकों से घृणा करने की बात कही थी। विलायत के बदमाश लोगों को पकड़-पकड़ कर डंडों में कायदे-कानून सिखाये जाते हैं, और फिर उन्हें साहब बना कर हिन्दुस्तान भेज दिया जाता है।""अब यह मेम साहब भी वहीं से ट्रेनिंग लेकर आई हैं।"

क्या संयोग था कि उसने ही कहा था..."अब हँसने पर भी चार्ज-शीट मिलेगी।"

टर्नघर के बंगाली मिस्त्री और वर्क्स कमेटी के सेक्रेटरी गोरा नाग ने हँसते हुए कहा था—"सतरहवीं लेबर कांफ्रेन्स फेल! उसकी किसी भी धारा में हँसी डिसप्यूट पर कुछ नहीं कहा गया है।"

"हाँ, साहब, कुछ नहीं कहा गया है। माफी माँगने की बात तो बिलकुल नहीं। किसी मौके और किसी विषय पर नहीं।"

"....मिस कान्ता के लेबर आफिसर बन कर आने पर मजदूरिनों ने 'औरत-औरत जिन्दाबाद' कह कर, उनका स्वागत किया था। किन्तु पहली रेशनलाइजशन में वे चली गईं—तब भी नहीं।"

"क्वार्टर्स के पानी-नलों को चार घंटे बन्द रखा जाने लगा—तब भी नही।"

"कम्पनी की दलाल यूनियन में जब ताला बन्द था और उस पर कब्जे के लिये जब लाठियाँ चलती थी (जिसमें आपका सर टूटा था), जब कि मिस कान्ता किसी दूसरी यूनियन से बात करने को तैयार न थीं, कारखाना चालू होने से पन्द्रह मिनट पहले चालू होता और बन्द होने के आधे घंटे बाद तक चलता रहता था—तब भी नहीं।"

"''और सबसे पहली बार जब यह कहर शैतान की छाया की तरह मशीनों के बीच डोलने लगी—''तब भी कुछ नहीं कहा गया। माफी की बात तो बिल्कुल नहीं।''

रंगलाल तालाब से निकलते हुए उस आदमी से मन-ही-मन बातें करता है—''यही न कि आप काम दिला देंगे? इसीलिये कहते हैं कि कुछ कहो। खुल कर क्यों नहीं कहते कि चार्जशीट का जवाब देने से पहले एक बार अकेले में मेम साहब की कोठी पर चलो। वे तुम्हारे कसूर गिना देंगी, और तुम मान कर चले आना। हो गया। बस।''

'नहीं हुआ! बस क्या?' रंगलाल प्रतिवाद करता है।

लेकिन वह आदमी सामने नही है, जिसको सम्बोधित करके वह कहता है—''मैं तुम्हारी हड्डी तोड़ दूंगा। तुम मेरा पीछा मत करो। लोग शक करेंगे, कि रंगलाल बिक गया।''

वह अपने सूखे होंठ चबाता है। तालाब के पानी में डूबने-उतराने से उसकी प्यास और बढ़ गई है। वह तीन बजे खाना खाता है और चार बजने का इन्तजार करने लगता है, जब मेम साहब के सामने उसकी पेशी होगी।

वह सोचता है।

"....और तब अचानक ही कारखाना ठप्प हो गया था। लोगों ने इसे हड़ताल, तालाबन्दी या लॉक-आउट, कुछ नहीं कहा। बल्कि—ठप्प।

पोस्टर में यही लिखा गया। तीन दिनों तक सब कुछ ठप्प रहा। तीन दिनों तक मिस कान्ता पोठिया मछली की तरह छटपटाती रहीं। अंग्रेज मैनेजर उनके पास खड़ा रहकर पाइप पीता रहता। वे मजदूर प्रतिनिधियों से बातें करती। मैनेजर कुछ न बोलता। कान्ता गिलहरी की तरह बातों को कुतर-कुतर कर चबातीं, और सबको 'नहीं' में उगल देतीं। फिर मैनेजर उनके कंधे पर हाथ रखता, और लोहे की जाली से हटाकर चेम्बर में ले जाता।

बाहर हो-हल्ला होता। मिस कान्ता के पुतले जलाये जाते। इस पहली आजमायश में ही उनका आहत नारी मन आधा बाहर और आधा बिल में फँसे साँप की तरह सिर पटक-पटक रह गया। लेकिन फांस गहरा था। वह निकल नहीं पाती।

खबरें अखबारों में छपीं। पोस्टर और माइक पर बखानी गई। शायद उन्होंने अपने जलते पुतले को भी देख लिया। और चौथे दिन बमुश्किल वह एक समझौते पर आई कि—मजदूरिनों के मामले को ट्रिब्युनल में भेज दिया जाय। आठ घंटे से अधिक काम को ओवरटाइम माना जाय। और सब ज्यों-का-त्यों। आंशिक हार-जीत के साथ कारखाना चालू हुआ।

मगर इस बार!

मामला सिर्फ एक आदमी का है।

चार बजा है। कारखाने की शिफ्ट बदली है। गेटों पर भीड़ उमड़ पड़ी है। रंगलाल गेट तक जाता है। मजदूर उससे मामले के विषय में पूछते हैं। पर आज शाम मामले की सुनवाई नहीं हुई है। बात कल सुबह तक के लिये टल गई है।

यूनियन बाबू ने साफ इनकार करने की बात सिखाई है। जवाब भी यही है—'देख कर मैं नहीं हंसा।'

लालचन ने चार्जशीट का कागज रंगलाल के हाथ में दे दिया है। वह कहता है—"हम तैयार हैं। मेम साहब ही आज दरबार लगाने को तैयार नहीं है।" वह भाषण देने के रौ में बोल रहा है। भीड़ इक्ट्ठा हो गई है। बहुत-से लोग आते हैं, और भीड़ में झांक कर चले जाते हैं। मजाहिया सेंगरा मजदूर नथुनी रंगलाल के कंधे पर हाथ रखता है। बहुत ही गंभीर होकर पूछता है—"रे, क्या देखकर हँसा था, रे!" लोग हँसते हैं। मगर वह नहीं हँसता। गंभीर मुद्रा में ही फिर धीरे से पूछता है—"कुछ उघाड़ देखा था क्या, रे ?"

इसी बीच एक नौजवान कड़क कर कहता है—"उनका छिपा ही क्या है, जो उघाड़ होगा ? दिखाती हैं, तो देखेंगे नहीं ?"

"हाँ, तो यही कहो न भाई, कि कुछ देखा है!" कहता हुआ नथुनी चला जाता है। हँसी फिर गूँजती है।

लालचन देह पोंछता हुआ, भीड़ से निकलता है। कहता है—"ऐसा मजाक तो कभी न होता था—बिना कारण कारखाने में बखेड़ा खड़ा कर देना। चालीस साल इस कारखाने में गुजरे। मूँछें पक गईं। इन साहब सूबों का जन्म नहीं हुआ होगा, तब से हूँ। बहुत-से झगड़े, लड़ाई, हड़ताल सब देखे। मगर ऐसा बखेड़ा कभी नहीं देखा।

रात आती है।

हवा गुम हो गई है। धुओं में लिपटी पीली बत्तियाँ जलती हैं। होटलों में मच्छर और मक्खियाँ उड़ती हैं। लोग खाते हैं, चाय पीते हैं। शहर की उदास रात में लोगों का एकरस कलरव है। मतहइयों में भीड़ है। लोग अपने प्लेटों को धो-धाकर अपने हाथ से ही खाना निकालते हैं, और एक लाइन में बैठ जाते हैं। बातें—सिर्फ कारखाने की बातें। नौजवान झुंझलाकर कहते हैं—"आप लोगों के लिये अब भी कारखाना चालू है ?"

लालचन कहता है—"देहातों में एक-एक इंच जमीन के लिये लोग सिर कटा देते हैं। और यहाँ पूरी नौकरी चली जाती है, कुछ नहीं बोलते। हद है!"

"हद नहीं है। मगर काका, इन पेटू लोगों को कहो कि हमेशा कारखाना न चालू रखें। इनका काम पेट भरना और कारखाने में जाना है। तुम्हारी वजह से कुछ पैसा यूनियन को दे देते हैं। इनको न तो *कभी चार्ज शीट होगी, न कारखाने से निकाला जायगा। ये इस काबिल* हैं ही नहीं। नहीं। ये साठ बरसे नाबालिग हैं। इन्हें आदमी बनाओ।"

प्लेटें चल जाने की नौबत आती है। एक-दूसरे पर गुर्राते, कुड़बुड़ाते, आपस में गाते-बजाते लोग सो जाते हैं। बहुत रात गये तक जग कर लालचन बूढ़ी आँखों पर ऐनक लगाये, मतहई का हिसाब करता रहता है।

वह आदमी रंगलाल के सिरहाने बैठ कर फुसफुस करता है—"मान लेते, तो क्या बिगड़ जाता? आखिर तुम को काम ही चाहिये न!"

"जी हाँ। मगर कसूर मान लेने पर काम मिल जायगा?"

"हो सकता है, कि मिल जाय।"

"लेकिन मुझको मेम साहब की कोठी पर जाने की क्या जरूरत है?"

"जरूरत है।" वह आदमी रंगलाल को समझाना चाहता है। मगर रंगलाल कुछ भी समझ नहीं पाता। उसे हर बात समझ से बाहर लगती है।

वह आदमी उठकर चला जाता है। वह इस रात को ही रंगलाल को कोठी पर ले जाना चाहता है। उसने संकेत भी किया था, कि मामले की सुनवाई इसीलिये टली है।

उसके जाने के बाद रंगलाल छुटकारे की साँस लेता है। लालचन जब-जब उस आदमी को देखता है,उसकी भौहें तन जाती हैं। रंगलाल आत्म-

ग्लानि से भर जाता है। वह क्यों नहीं इस आदमी को आखिरी बार फटकार देता?

मतहई का हिसाब कर लेने के बाद, लालचन उसे पुकारता है—"जाग रहे हो? सो जा बेटे, यह तो होता ही रहता है।"

रंगलाल उसके इस लापरवाही के लहजे को महसूस करता है। उसे ऐसे केसों से रोज ही उलझना पड़ता है। हार-जीत होती रहती है। लोगों की छंटाई, बरखास्तगी, बहाली, सब होती रहती है। लालचन निस्संग होकर सब करता है। कहता है—"काम करना है, तो इस कारखाना, न उस कारखाना। लेकिन जहाँ रहेंगे, लोहा से लोहा बजा देंगे।"...... और वह तीस वर्षों से लोहा से लोहा बजा रहा है। कितनी बार चार्ज शीट और बरखास्तगी हुई, मगर वह लड़-झगड़ कर इसी कारखाने में रहा। एक बार तो डेढ़ साल तक बाहर था। फिर मुकदमे से जीत कर ढोल बजाता, हार पहने कारखाने में आया।

कमजोर, बूढ़ी रगें दुखती हैं।

रंगलाल के पास ही चारपाई पर पड़ते ही पाँच-छ मिनट में लालचन कराहने लगता है—नींद में। ऐसी कराह जैसे कोई पीट रहा हो। रंगलाल धीरे से उठता है, और लालचन के पैताने चला जाता है। उनके पाँव पर हाथ फेरता है। पिण्डलियों को धीरे-धीरे दाबता है। लालचन उठ बैठता है।

"कुछ कहना चाहते हो क्या?"

"काका, आप बहुत थक गये हैं। पाँव दबा दूं।"

"नहीं, नहीं! यह बुरी बात है। मैं थकता ही नहीं!"

"आप कराह रहे थे।"

"कहाँ? नहीं तो।"

"*मैंने सुना था।*"

"कुछ नहीं। आज तक मैंने नही जाना कि कराहना क्या होता है।"' तुम सो जाओ।'

लालचन फिर सो जाता है। फिर कराहता है। रंगलाल अपने बिस्तरे पर आता है। पंक्तिबद्ध बिछी चारपाइयों को देखता है। क्वार्टर्स के सामने लान में सैकड़ों चारपाइयाँ? अर्ध नग्न पड़े लोग। नींद में अपनी देह को खुजलाते, नोचते, खर्राटे भरते, कराहते, करवटें बदलते लोग। बिलकुल पास-पास सटे, सैकड़ों, पर एक-दूसरे से बेखबर, दूर-दूर बसे लोग। आज रात की हवा। चारपाइयों के ऊपर थरथराती, गुजरती हवा।

रंगलाल सोचता है—यह सब यही, ज्यों-का-त्यों रह न जाय। और उसे अकेले यहाँ से जाना पड़े।

उसे याद आता है—जनवरी की सुबह की हल्की-हल्की, कुहासे में लिपटी धूप। कारखाने के अहाते के फूल की डालियों पर पड़ी राख को झाड़ते हुए माली। पाट की गाँठों से लदी जाती और खाली लौटतीं ट्रालियां। "हो हइया, हो हइया।" दम लगा कर उन्हें ठेलते सँगरा मजदूर। लॉन की घास पर बिखरे सँगरा मजदूर। और धूप का काला चश्मा पहने मेम साहब।

"ये लोग घास पर क्यों बैठे है?"

"कुछ नहीं। फुरसत में यों ही धूप लेते हैं।"

"यह बैठने की जगह नहीं है।"

मेम साहब जमीन दाबती हुई चली जाती हैं। जगह खाली हो जाती है। अब वहाँ लोग नहीं बैठते। हाँ, कभी-कभी साहबों के कुत्ते धूप लेने के लिये घास पर लेटते हैं।

रंगलाल दाँत पीसता है।

लेकिन वह ट्रालियों और सँगरा मजदूरों को वहां से नहीं हटा सकीं। घास के बीच बिछी लाइनों पर ट्रालियाँ दौड़ती रही। सँगरा मजदूरों के बिरहे पर ठहाके गूँजते रहे।

जंगली !

मेम साहब थूक देती है। कभी-कभी लोग उनके इतने नजदीक सट जाते हैं, कि सड़े पसीने को बदबू उनकी नाक में घसी जाती है। लेकिन वह क्या करें ? लोग काम का बहाना निकाल कर ही उनके इतने नजदीक जाते हैं।

सेंगरा मजदूर नथुनी बहुत बखान करता है—"बसी-बसी कोड़ा-बाज देह ! रे फिरंगनी ! क्यों, रे, तूने तो नजदीक से देखा है न ?"

कैन्टीन की दाई फिरंगनो मुस्करा कर कहती है—ऊं-हूं, ढीला-ढीला। बस, सब ऊपर-ऊपर रंग का पोचारा है। मैंने तो उन्हें कोठी में सोते हुए भी देखा है—गौर से। सब तामझाम है।"

मेम साहब नजदीक से गुजरती है। सब चित्र की तरह चुप हैं। उनका चेहरा चढ़ जाता है। आँख पर काला चश्मा और चढ़ा लेती हैं। एक दिन सबों ने घेर कर उन्हें सलाम कर लिया। उस दिन वह खड़ी हो गईं। चश्मा उतार लिया। मुंह बड़ा सहज हो गया। कई क्षण तक तरल भाव लिये, खड़ी रहीं। कोई पूछता, तो शायद कुछ कहती। मगर कोई भी पूछने को तैयार नहीं हुआ। और वह आगे बढ़ गईं। रसाघर के मिस्त्री दीवान को एक दिन लोगों ने लॉन में ही पकड़ लिया। रंगलाल ने ही उकसाया था, कि आज इसको पकड़ो।

"मेम साहब के पीछे-पीछे क्यों घूमता है, रे ? रंगलाल ने ही पूछा।

"क्वार्टर के लिये दरखास्त दे रहा हूँ।"

"साले, रोज-रोज दस दिनों से पीछे-पीछे दरखास्त लिये घूमते हो !"

"या कोठी में जाकर पाँव टीपते हो !"

हँसी गूँजती है।

बीमा वल का करीम दीवान को अपनी तरफ खींच कर कहता है—"तू, साले पोंगा दलाली भी न कर पायेगा। और न मेम साहब का ही कुछ

कर पायेगा। उसके लिये भी ताकत और हिम्मत चाहिये। बेकार में काहे लाश की गंजन कराने पर तुला है।"

दीवान मिमियाता है।

गुलजार सरदार को आते देखकर, सब सकपका जाते हैं। उनको सलाम करके, अगल-बगल हटने लगते हैं। सरदार झिड़कते हैं—"तू सब इस तरह भीड़ लगाये क्यों रहता है?"

सब के सब चुपचाप सुन लेते हैं।

दीवान मौका गनीमत समझ कर निकल जाता है।

कुछ देर बाद मेम साहब हाथ में चश्मा नचाती हुई, आफिस से कारखाने की ओर जाती हैं।

दीवान दस गज की दूरी पर मेम साहब के पीछे-पीछे घूमता है, और वैसे ही उनकी कोठी तक चला जाता है।

फिरंगनी कहती है—"मेम साहब पलँग पर लेट जाती हैं। और वह फर्श पर बैठ कर औरतों की तरह उनसे बातें करता है।"

"और लोग भी जाते हैं?" रंगलाल पूछता है।

"जाते हैं। मगर बताऊंगी नहीं। जान चली जायगी।"

रंगलाल रोकता है। मगर फिरंगनी पकौड़ी का बेसन भिगोने के बहाने भाग खड़ी होती है।

रात ढलती है। रंगलाल करवट बदलता है।

वह सोचता है, 'लालचन काका ने मना कर दिया है कि वह चार्जशीट की बात घर को न लिखे, नहीं तो रोना-धोना शुरू हो जायगा। चूल्हा नहीं जलेगा। जैसे उसकी मौत हो गई हो। लेकिन ऐसा हुआ, तो कितने दिनों तक छिपा कर चलेगा?'

वह सोचता है।

इतना सब हुआ। लेकिन उसे अकेले सजा क्यों मिली? और इतनी ओछी बात कह कर क्यों सजा मिली?

मेम साहब लाइन घूमने कारखाने में जाती हैं। मशीनों की सँकरी गलियों के बीच से गुजरती है। एक-दो जगह मजदूरों से उनकी देह छू जाती है। कभी उन्हें लगता है, कि जान-बूझ कर ऐसा हुआ है। कभी लगता है कि जगह इतनी कम है कि सट जाना अस्वाभाविक नहीं। कभी लाइन घूमते हुए उन्हें लगता है कि उनके पीछे मशीनों पर खड़े होकर सब हँस रहे हैं। तब वह एक झटके के साथ पीछे मुड़कर देखती है। लेकिन पीछे कतार बँधी मशीनें बदस्तूर चलती होती है। मजदूर उन मशीनों पर झुके होते हैं। प्रायः उनकी ओर कोई नहीं देखता होता। वे हतप्रभ भी होती हैं, और लज्जित भी। उन्हें लगता है, कि अगर कोई देखता है, तो क्या देखता है? वह ड्यूटी करने आई हैं, तो उनके मन में यह सब क्यों उठता है? उन्होंने सुना था, कि चटकल के मजदूर बड़े बदमाश होते हैं। उनका चेहरा तनता है। 'इन जंगली लोगों में इतनी हिम्मत कहाँ, जो मेरी ओर देखें?'

यह अकड़कर चलती हैं। कंधे से साड़ी का पल्लू ढलक जाता है। गर्दन से ऊपर ही कटे बाल होते हैं। ऊपर और नीचे से आधा पीठ उघाड़ होती है। चलती मशीन का आदमी अगर उनको देखने लगे, तो उसका जरूर एक्सिडेंट हो जाय।

जमीन में लोटते उनके आँचल को देखकर, मजदूर गर्दन हिलाकर कहते हैं—"यार, यह रोज एक बार घूम जाय, तो झाड़ू देने की जरूरत न रहे!"

मगर उस दिन—

वह स्पिनिंग के बीच घूम रही है। माल खराब मिला है। इसलिये गर्दा अधिक उड़ता है—जैसे देहाती सड़क पर धूल। यह अपने छोटे बालों को झटका देती हैं, और फेसुए के कुछ टुकड़े उनकी छाती पर आकर अटक जाते हैं। उन्हें शर्म आती है। वे थोड़ा किनारे हटकर आँचल सरकाती हैं और खड़ी रहती हैं। उसी समय हेल्पर रशीद ऊपर को

सींक पर चमड़े का सापट फेंकता है। सापट जब सींक पर दौड़ने लगता है, तो बहुत-सा पुराना फेसुआ गिरता है। मेम साहब की देह पर भी कुछ पड़ता है। तेल से चपचप काला फेसुआ जहाँ पड़ता है, सट जाता है। जब वह हाथ से पोंछती हैं, तो वह चेहरे पर घिस जाता है। हाथ की तलहटी में भी वही कालिख नजर आती है। मिस कान्ता पाँव पटकती है। दौड़ते सापट पर हाथ फिसलाते हुए हेल्पर रशीद खड़ा है, और उनकी ओर क्षमा माँगने जैसी दृष्टि से देखता है। उसकी दृष्टि में ग्लानि और अफसोस है। मिस कान्ता जहरीली नजरों से हेल्पर को देखती हैं, और बड़बड़ाती हैं। उनका गला फूल जाता है, चेहरा विकृत हो जाता है। मगर मशीनों की तूफानी गड़गड़ाहट में उनकी आवाज डूब जाती है। कोई नही सुनता। इस अवस्था में उनकी उत्तेजना और बढ़ती है। रशीद दो कदम आगे बढ़कर, अपनी लेबर आफिसर से क्षमा मांग लेना चाहता है। मगर उसके कदम उठकर रह जाते हैं। वह सोचता है, कि कुछ कहते समय मेम साहब के कान तक मुँह ले जाना पड़ेगा। फिर उनके गाल से मुँह सट सकता है।

वह सहम जाता है। निरुपाय हेल्पर असमंजस में खड़ा रहता है।

मिस कान्ता की देह पर पसीने की धार चलती है। वह ब्लाउज में किनकिनाहट का अनुभव करती है। लगता है वहाँ भी गर्दा चला गया है। वह हाथ देखती है। पसीने पर गर्दा जमा है। चेहरे को उंगलियों से छूती है। चिपचिपाहट से मन भन्ना जाता है। सामने ही एक अधेड़ उम्र का मोटा-सा मजदूर अपनी तोंद और छाती के पसीने और गर्द को छुरी से काछ-काछ कर फेंक रहा है। वह बिल्कुल उघार है, और गर्द में डूबा हुआ है।

मिस कान्ता का जी मिचलाता है। वह आगे बढ़कर, मोटर के नीचे खड़ी हो जाती हैं। रूमाल से चेहरा साफ करती है, और गहरी सांस छोड़ती हैं। मगर वह अभी पूरी तरह आश्वस्त भी नही हो पातीं, कि ऊपर से तेल की एक बूँद उनके खुले कंधे पर टपकती है। उन्हें लगता है, जैसे

बिजली का टूटा तार आकर शाक मार गया है। मोटर से टपको गर्म तेल की बूँद से उनका कंधा जल जाता है। कंधे में जलन होती है। वह बार-बार रूमाल से कंधे को पोंछती हैं।

सब-के-सब दूर से देखते हैं। कोई भी उनके पास नही जाता। मशीनमैन ब्रज पण्डा मशीन के ऊपर से झांकता है। लोग उसे इशारा करते हैं। वह विवश भाव जताता है, मैं क्या करूँ ? वहां तो हमेशा तेल टपकता है।

मशीनमैन को मिस कान्ता देखती हैं। वे फिर बड़बड़ाती हैं। शायद उसे गालियां देती हैं।

अब सच ही अगल-बगल की मशीनें बन्द होने लगती हैं। लोग दूर ही से देखते हैं। ब्रज पण्डा उसी तरह निर्लिप्त देखता है।

अचानक ही मेम साहब को लगता है कि यह सब किसी साजिश के अन्तर्गत उन्हें जलील करने के लिये हो रहा है।

लालचन वहां देर से पहुँचता है। लोग उसे बताते हैं और वह मेम साहब तक जाता है। वह उन्हें सलाम करता है। पर वह जवाब नही देती। फिर वह बड़े कायदे से झुककर उनके कान तक मुँह ले जाता है। कहना चाहता है—'मशीनमैन का कसूर नही। वहाँ खड़े होने वाले तमाम लोगों पर तेल टपक सकता है। मगर कह नही पाता। एक ही दो बार ओंठ हिलते हैं, कि मेम साहब उसे ठेलकर खुद पीछे हट जाती हैं। जमीन पर थूकती हैं। लालचन हक्का-बक्का रह जाता है। उसे पसीना आता है।

मेम साहब तेज कदमों से आफिस की ओर चलती हैं।

अपनी मशीन पर खड़े-खड़े रंगलाल मुस्कराता है। लालचन काका माथा नीचे किये कुछ देर तक खड़े रहते हैं।

....इतने लम्बे काण्ड में तमाम लोगों को कुछ नही हुआ और उसे सजा मिल गई। वह कुछ नही सोच पाता—न कल के विषय में, न काम के विषय में।

कुछ लोग कहते है—"बेवजह चार्जशीट है। इसलिये काम की उम्मीद नही के बराबर है।"
कल शाम की एक आदमी की बात भी उसे याद आती है—'बहुत बड़ी वजह है।'
सुबह होती है।
रंगलाल देर तक सोता रहता है। लालचन उसे जगाता है। "चल उठ। आठ बजे आफिस मे जाना होगा।"
वह उठता है अलसाया-सा। जैसे सुबह न हुई हो। तालाब में नहाने के लिए जाता है।
और जब वह आफिस में वर्क्स कमेटी के सेक्रेटरी गोरा नाग के साथ हाजिर होता है, तो उसके बाल से पानी टपकता है। वह तालाब से निकल कर, बाल में कंघी भी नही करता।
गोरा नाग चार्जशीट का कागज मेम साहब के सामने मेज पर रख देता है। रंगलाल उन्हें सलाम करके, एक तरफ खड़ा हो जाता है। मिस कान्ता व्यस्तता के अन्दर ही उड़ती-सी एक नजर उस कागज की ओर डालती हैं, और एक तरफ सरका देती हैं।
उनके इस कार्य में लापरवाही का भाव है। मगर लेबर आफिस के क्लर्क अपना काम छोड़कर कनखियों से उधर देखते है। जिस मामले की प्रतीक्षा में मेम साहब कल सुबह से बैठी हैं, उसके प्रति यह उदासीनता। बाबुओं को अचरज होता है। एक दूसरे का मुंह देखते हैं। बोलते कुछ नही।
गोरा नाग कुछ कहना चाहता है। मगर मेम साहब उसे संकेत से चुप करा देती हैं और बाहर निकल जाने को कहती हैं।
वह बाहर निकल जाता है।
कागज की ओर दुबारा देखे बिना वह सिर उठाकर, रंगलाल की ओर देखती हैं। बड़े ही राजदार ढंग से कहती हैं—"जब कि तुमने बिल-

कुल इनकार ही कर दिया, तो कुछ भी कहना बाकी न रहा। अगर तुमने अपनी गलती मान ली होती, तो कुछ सोचा जा सकता था।"
वह रंगलाल की ओर देखती है।
वह कुछ नहीं बोलता।
"तो फिर जाओ।"' क्यों ?" मेम साहब कहती हैं और नजरें गड़ा कर उसकी ओर देखती हैं।
फिलहाल वह उनका चेहरा नहीं है, जो उनका होता था। ऐसा कुछ है, जो ऊपर नहीं आता। छिलके की खुरदुरी कठोरता सम्भवतः उस तिरस्कार का प्रतिशोध थी, जो उसकी हँसी से उन्हें मिला था।
रंगलाल लौट आता है।
आफिस के बाबू अचरज से भर कर देखते हैं। मामला खलास। कोई ट्रायल नहीं! कहाँ तो एक-एक चार्जशीट पर घंटों ट्रायल होता है।
आफिस के बाहर भीड़ जमी है। लालचन भीड़ के लोगों को सम्बोधित करता है—"अगर ऐसा ही है, तो मेम साहब खुली अदालत में इज्जत-बट्टा का केस करें! गरीब के पेट पर लात क्यों मारती हैं।
"यह जंगली कानून है!" लोग चीत्कार करते हैं।
कान्ता अपने कान पर उँगली रखती हैं। दरबान लोगों को आफिस के सामने से हटाते हैं।

वह जान गया है कि उसका डिसमिसल आर्डर अब तक निकल गया होगा। वह आखरी बार इस कारखाने में है। अब वह आना चाहेगा, तो गेट पर ही दरबान रोक देंगे।
गेट पर भी भीड़ इकट्ठा है। लालचन और गोरा नाग अलग-अलग गिरोहों में लोगों से बातें करते हैं।
वह आदमी अचानक रंगलाल को भीड़ से खींच कर अलग करता है। बहुत ही अफसोसनाक लहजे में कहता है—"आखिर तुमको क्या मिला, बोलो ?"

"तब क्या मिलता ?" रंगलाल संयत किन्तु लापरवाह स्वर में पूछता है।
"तुम्हारा भाग्य खराब है," वह आदमी रंगलाल को हिकारत की नजर से देखता है।
रंगलाल से अब सहा नहीं जाता। और वह उस आदमी की नाक पर जोर से एक हाथ मारता है।
"साला, तू चाहता क्या है ?"—रंगलाल चीख पड़ता है।
वह आदमी तिलमिला कर, मुंह ढंके गिरता है। फिर खड़ा होता है।
लोग दौड़ पड़ते हैं। "दलाल को हलाल करो !"
मगर लालचन और गोरा नाग बीच में आकर बचाते हैं। उसे और मार नहीं पड़ती। वह भाग कर कारखाने चला जाता है।
रंगलाल हक्का-बक्का है। वह कुछ नहीं सोच पाता।
रात आती है।
रंगलाल को नींद नहीं आती। वह पड़ा रहता है।
लालचन रात भर घूम कर मीटिंगें करता है। चार बजे सुबह लौटता है। और सुबह से ही बैठकी हड़ताल शुरू होती है। लोग अपनी-अपनी मशीनों पर हैं, पर चुप बैठे हैं। काम नहीं करते।
गेटों पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपकते हैं—'रंगलाल को काम दो। कान्ता को निकाल दो !'
दिन चढ़ता है। धूप चढ़ती है।
अंग्रेज मैनेजर मजदूरों के सामने आने को तैयार नहीं है।
बड़े आफिस के सामने भीड़ बढ़ती जाती है। क्षुब्ध भीड़ नारे लगाती है—"कम्पनी का जुल्म नहीं चलेगा ! जंगली कानून वापस लो !"
अचानक ही मिस कान्ता कार से उतर कर, बड़े आफिस की ओर आती दिखाई पड़ती हैं। भीड़ उनकी ओर दौड़ती है, और उन्हें चारों ओर से घेर लेती है। कान्ता को बीच में करके, मजदूर उनके चतुर्दिक एक

गज जगह छोड बाँहों का प्राचीर रचते है। फिर उसी तरह गोल भीड़ कई बीघे में फैलती जाती है। हजारों हाथ उठते हैं। मुट्ठियाँ तनती है। फिजा को कंपा देने वाले नारे लगते है। और —"जवाब दो!" मगर मिस कान्ता जवाब नहीं देती। कानों पर उँगली रखती हैं। वे जब भी देखना चाहती है, तो सामने आदमियों का उफनता समुद्र ही नजर आता है। और देख नहीं पाती।
क्रोध से धधकती भीड़।

धूप तेज है। बिल्कुल सिर पर है। मेम साहब के माथे से पसीना चलकर चप्पल तक जाता है। चप्पल भीग रहा है। उनका चेहरा पहले लाल, फिर काला होता है। पसीने की धार के साथ पाउडर की सफेदी और पेंटिंग की लाली बहती है। उनका असली साँवला रंग खुल जाता है। कनपटी पर बाल का गुच्छा पसीने से चिपक जाता है। होंठ चबा कर, वे लिपस्टिक की सम्पूर्ण लाली चबा जाती हैं। काले सूखे होंठ पर अब वह जीभ भी नहीं घुमाती।

"हम नंगे पाँव हैं। पाँव जलता है। जवाब दो!"

मिस कान्ता प्रायः बहरी हो गई हैं। अब वह कानों पर तलहथी नहीं रखती। डेढ़ घण्टे बीत गये। मगर एक बार भी उनके कंठ से आवाज नहीं फूटी। वह ज्यों-का-त्यों चित्र-लिखित-सी खड़ी रही।

पुलिस और दरवान भीड़ पर पीछे से अचानक हमला करते हैं। लाठियाँ बरसती हैं। आँसू गैस के हथगोले पड़ते हैं। जहरीले धुएँ की वर्षा होती है। भीड़ में भगदड़ मचती है। भयानक चीत्कार, कोहराम मचा है। हजारों की भीड़ दिशाहारा हो, गिरती-पड़ती भागती है।

इस बीच भी बाँहों का प्राचीर बहुत देर तक अटूट रहता है। मगर जहरीले धुओं के बीच बच नहीं पाता।

मेम साहब डगमगाती हैं, और गिर पड़ती है। लाठियों की चोट से तिलमिलाकर, भीड़ मेम साहब को कुचलती हुई भागती है। □□

एक और विदाई

★

यह जाड़े की सिकुड़ी सिमटी-सी शाम बेहद मनहूस थी। पानी बरसा था और हड्डी को कँपकँपा देनेवाली ठंढी हवा चल रही थी। इतवार का दिन था, ज्यादातर लोग अपने घरों में ही थे। चटानन्द दोनों हाथ जोड़े कुली लाइन के क्वाटरों में घूम रहे थे कहते जा रहे थे—"भाइयो, मुझे विदा दो, अब मैं तुम्हारे शहर से जा रहा हूँ।........"

लेकिन लोग थे कि उन्हें विदा नही दे रहे थे। कोई भी उनकी इस अन्तिम विदाई को गम्भीरता से नही ले रहा था। लोग अपने घरो में ही बैठे रहे और चटानन्द हाथ जोड़े घूमते रहे। कोई अगर उन्हें रोककर पूछता कि क्यों जा रहे हैं, तो रुकते और अपने जाने का कारण समझाते। लेकिन लोग अपने घरों से झाँककर देखते थे और कहते थे। —'अरे चटवा है, बाहर लखनऊ-दिल्ली कहीं जाना होगा, चन्दा उगाहने का बहाना बना रहा है।' इस तरह कोई भी उनकी मार्मिक विदाई पर ध्यान नही दे रहा था।

लेकिन चटानन्द को लोगों की उपेक्षा का मलाल नहीं था, वे जनता को पहचानते थे, जैसा कि जनता भी उनको पहचानती थी। यह रिश्ता

बेहद पुराना था। निहायत बंजर भूमि पर उगी हुई जंगली घास के समान ही यह रिश्ता था, जिसके उखड़ने या टूट जाने का खतरा कम था। औद्योगिक बस्तियों के लोग अपने मशीनी जीवन में ऐसे रिश्तों को मौसमी बुखार में गुलबनप्शा के काढ़े जैसा ही इस्तेमाल करते हैं। और दोनों पक्ष जब इस बात को अच्छी तरह जानता हो तो सेंटीमेंट पर चोट लगने का सवाल ही नहीं उठता।

वे घूमते हुए लाइन के अन्तिम छोर पर एक क्वाटर के सामने खड़े हो गये। ऐसी हालत में बगल के क्वाटर और उस क्वाटर के दो-तीन मजदूरों को उनके पास आना पड़ा। दो-तीन आदमियों को जमा होते देख उन्होंने सोचा कि यहीं एक भाषण अपनी विदाई के बनिस्बत दे डालूँ, छुट्टी मिले, सामान बाँधू और कल की तैयारी करूँ। एक मजदूर ने पूछा—'किसी पार्टी की मिटिंग-विटिंग में जाने के लिये चन्दा उठाना चाहते हैं क्या नेताजी !'

इतना सुनते ही चटानन्द जी का मूड खराब हो गया। दर-असल ऐसी बातों को वे कभी भी बुरा नहीं मानते थे। लोगों से साफ ही कह कर मांग लेते थे—दो भाई, जो भी समझ कर दो; लेकिन दो तो, यही समझो कि चटवा खाने के लिये मांग रहा है। लेकिन आज की बात दूसरी थी, वे लोगों से सहज और मानवीय रिश्ता जोड़ना चाहते थे। वह कारखानों का न टूटनेवाला रिश्ता तो है ही, जहाँ जायेंगे वहीं के लोगों से वह रिश्ता जुड़ जायगा। ... लेकिन इस अन्तिम क्षण में भी लोग उन्हें गलत समझ रहे हैं, जानकर उन्हें दुःख ही हुआ। बोले—'तुमलोग चाहे जो समझो, मुझे गाड़ी के किराये के लिये कभी चन्दा नहीं करना पड़ता। मुझे दिल्ली जाना होता है तो टिकट नहीं कटाता, डिब्बा ले लेता हूँ—डिब्बा ! क्या समझे। कलकत्ता से आसनसोल तक हड़ताल के लिये, आसनसोल से मोगलसराय तक बाढ़ या अकाल के लिये और मोगलसराय से दिल्ली तक गोवध-बन्दी के लिये चन्दा मांगता हुआ चला

जाता हूँ। धोखा देने के लिये पूरी ट्रेन पड़ी है भाई, तुम लोगों को क्यों धोखा दूँगा ? आज तो ऐसी बात मत करो मेरे भाई, एक दुखी आत्मा, जिसे इस साली कम्पनी ने सताया है, [उन्होंने चिमनी की तरफ उँगली उठाकर इशारा किया) बिलखती हुई इस शहर से जा रही है, इस ओर तो देखो। माना कि मैंने बहुत से अपराध किये हैं, लेकिन हूँ तो तुम्हारे ही वर्ग का आदमी। कम्पनी ने मुझको कान पकड़ कर निकाल दिया, लेकिन कोई भी मेरी ओर से बोलने वाला नहीं है। कहते हैं लोग चटवा दलाल था लेकिन था तो हिन्दुस्तानी। अंग्रेज कम्पनी ने सताया है !'

""चटानन्दजी तबतक जोश में आ गये थे, उनकी आवाज कांप रही थी, सांसें फूल रही थीं, अब वे भाषण ही देने लगे थे। उनकी तेज आवाज सुनकर लोग भी इकट्ठा होने लगे थे। उन्होंने अधिक लोगों को देखकर भाव-विह्वल हो कहा—मेरे हिन्दू-मुसलमान भाइयो ! अंग्रेज मैनेजर ने, जो गाय और सुअर दोनों खाता है—मेरे मुँह पर थूक दिया था ! मैंने इस बात को गेट मिटिंग पर चिल्ला-चिल्ला कर कहा, लेकिन कोई भी सुनने के लिये तैयार न हुआ। तब मैं इस शहर में कैसे रहूँगा। आखिर में मैं लाल झण्डा वालों के यहाँ गया, कहा—मुझे भी कम्युनिस्ट बना लो और मेरी नौकरी के लिये हड़ताल करा दो। मुझे लाल झण्डा दो, मैं प्रचार करूँ। लेकिन वे झण्डा देने को भी तैयार न हुए। का० घोष कहने लगे कि चटानन्द जी, अगर आपने लाल झण्डा लिया तो आपका भी नुकसान होगा और लाल झण्डे का भी। मैंने पूछा—वह कैसे ?

उन्होंने बताया कि कम्पनी समझेगी कि चटानन्द कम्युनिस्ट हो गया, अब उसे काम मत दो और मजदूर समझेंगे कि"'कि" आप तो जानते हैं—हँ-हँ मैं खूब जानता हूँ, दलाल के हाथ में लाल झण्डा देखकर मजदूर बिदक जायेंगे। लेकिन मैं कामरेड घोष की बातों में न आया। बाजार से जाकर इकरङ्गा खरीदा और लाल झण्डा बना लिया। इसी सामनेवाले

चौहारे पर खड़ा होकर ऐलान किया—यह मजदूरों के खून में रंगा हुआ झण्डा पूरे मजदूर वर्ग का है, मैं भी मजदूर हूँ, कामरेड घोष मुझको लाल झण्डा लेने से रोक नही सकते। ""मैं तीन दिनों तक लाल झण्डा लेकर घूमता रहा, लेकिन मजदूरों ने हड़ताल नही की। मुझे रोना आ गया। मैंने कौन-सा अपराध किया था? यही न कि मैनेजर की बागवानी से एक गोभी का फूल तोड़ लिया था। खाने की चीज थी, तोड लिया था, इसमे कौन-सा आसमान टूट गया था? आप लोगों को मालूम नही है कि उस हड़ताल में, जब कम्पनी हड़ताल तोड़कर बना हुआ माल बाहर भेजवाना चाहती थी और जब बुलडोजर क्रेन डब्बों को ठेलकर गेट के बाहर निकाल कर साइडिंग में ला रहा था तो हजारों की भीड़ में मैं ही था, जो रेल की पटरी पर गर्दन रखकर सो गया था और कहा था कि डिब्बे के पहिये मेरी गर्दन से होकर गुजरेंगे। कुछ लोगों ने कहा था कि कम्पनी से घूस लेने के लिये ही मैं यह हिरोइज्म दिखा रहा हूँ। कैसी दुनिया है, लोग इसको नही देखते थे कि मैंने कितना जोश भर दिया था मजदूरों में। हड़ताल खींचकर लम्बी चली गयी थी।"" और अगर मैंने थोड़े पैसे कम्पनी से लिये थे (झूठ नही बोलूँगा, ईमान की बात है, साले अंग्रेज मैनेजर ने सिर्फ सौ रुपये दिये थे।), तो न मेरे कहने से हड़ताल हुई थी और न मेरे कहने से टूटती। अगर मैंने बीच में कुछ सौदे कर लिये तो किसी दूसरे का क्या बिगड़ा? और उस गांधी टोपीवाले एक्स एम० एल० ए० ने (जिनके बारे में गांधीजी ने खुद कहा था, मेरे सामने सोदपुर में, तब का उनके साथ का मेरा फोटो भी है, चलकर मेरे घर में देख लो कि जनता इनको खोज-खोज कर मारेगी।) पचास हजार रुपये लिये थे। वह आज भी नेता हैं और मैं निकाल दिया गया।""""

तब तक रात हो आई थी। लोग चले गये थे। चटानन्दजी अकेले खड़े थे। वे धीरे-धीरे अपने क्वाटर की ओर चले। वे सोच रहे थे, आज

ही भर इस क्वाटर में रहूँगा। कल दरवान मेरा सामान निकाल कर फेंक देगा। उनकी आंखों में आंसू आ गये।

सुबह भी पानी बरस रहा था। जाड़ा भी तेज था; लेकिन उन्होंने दरवानों के आने के पहले ही अपना सामान निकाल कर बरामदे में रख लिया था। दरवान आकर क्वाटर में ताला लगा गये थे। रात को उन्होंने सोचा था कि सुबह वे खुद एक छोटा-सा विदाई समारोह कर लेंगे। लेकिन इस समय उनकी आंखों में सिर्फ आंसू आ रहे थे। हिरोइक फेयरवेल की बात उनके दिमाग से बिलकुल निकल गयी थी। उस समय वे और भी धराशायी हो गये, जब रिक्शेवाला सामान लद जाने के बाद किराये का मोल-तोल करने लगा। लोगों के स्वार्थीपन और काँइयाँपन से उन्हें वितृष्णा होने लगी। उन्हें सबसे अधिक मोह अपने कुत्ते के प्रति हो रहा था, जिसे उन्होंने बचपन से पाला था और अब छोड़कर जाना पड़ रहा था। उन्होंने चलने से पहले कुत्ते को पुचकारा था, उनकी आँखें फिर भर आईं। उन्होंने सोचा कि अगर इस समय मेरे पास फूल की माला होती तो कुत्ते को पहना देता और चल देता। □□

पंच

✻

शनिवार की सुबह कारखाने के गेट पर हमेशा की तरह ही भीड़ थी। खानगी विक्रेताओं की फुटपाथी दूकानों से प्रायः सब रास्ते भर गये थे। कारखाने से तलब लेकर निकले मजदूर इन दूकानों से निश्चय ही कुछ न कुछ खरीदते तब घर जाते। जुठन भी डुगडुगी बजाकर—'घर्र रगड़ की दवा'—बेचनेवाले की दूकान पर झुक कर एक डिबिया उठा रहा था। डिबिया में खाज की दवा थी।

वह जानता है, इस दवा से खाज, खुजली या दाद कुछ भी नही जाता, फिर भी महीने में यह दो आने की डिबिया जरूर खरीदता है। हो सकता है, वह सोचता हो, इससे सस्ती दवा भला और कहाँ मिलेगी! लेकिन ऐसा सोचनेवाला यह अकेला नही है। यह घर्र रगड़ वाला करीब दस वर्षों से इस गेट पर दवा बेच रहा है। उसके ग्राहकों की संख्या हजारों में है, जो बारी-बारी से, बार-बार उसकी दवा खरीदते हैं। (दर-असल चटकलों में दाद-खुजली की बीमारी आम है।) बीमारी नही छूटती, फिर भी इस दवा वाले को कोई मार कर भगाता नहीं। शायद लोग दस वर्षों से इस आसरे दवा का इस्तेमाल कर रहे हैं कि बीमारी कभी न कभी

तो छूटेगी ही। या लोगों ने यही सोच लिया हो कि, चलो, बीमारी तो छूटने से रही, यही संतोष रहेगा कि दवा भी कर रहा हूँ। जुठन भी उन्हीं मरीजों में था। उस समय उसका एक हाथ दवा की डिबिया पर और दूसरा पट्टों के बीच था।

उसकी गर्दन पर पीछे से किसी ने हाथ रखा। उसने पीछे मुड़कर देखा, वह महाजन ही था। वह हाथ में डिबिया लिये हुए ही खड़ा हो गया। महाजन ने उससे पूछा—तुम अभी कह रहे थे कि मेरे पास एक भी पैसा नहीं बचा है, दूसरे महाजनों ने सब ले लिये.......!'

जुठन थोड़ी देर असमंजस में रहा। गर्मियों की गँवई सड़कों के किनारे खड़े बबूल के सूखे-झंखाड़-पेड़ों की सूखी कलूटी पपड़ी की तरह ही उसके चेहरे का रंग हो गया था। लगता था, ठीक उस पेड़ की तरह ही उसका चेहरा फट गया है और उसमें दरारें पड़ गई हैं। एक जोर का झटका देने से ही बहुत सारी चैलियां उसके चेहरे से झर जायेंगी। परती की डाभियों को छिल दिये जाने के बाद लपलपाती लू में जो पीली और काली खूंटियाँ निकलती हैं और पूरे प्रान्तर को बदशक्ल बना देती हैं, वैसी ही उसके चेहरे पर खिचड़ी दाढ़ी उगी हुई थी, जिनमें वह उँगलियाँ डालकर खुजला रहा था। या कहिये तो एक तरह से नोच रहा था। उसके चेहरे पर पसीने की धार चलने लगी थी। वह कुछ देर तक चुप रहा। इन तमाम परिस्थितियों में उसके चेहरे पर गजब की स्थिरता थी जिसमें यह अंदाज लगाना कठिन था, कि वह क्या निर्णय लेगा। शायद वह इतनी देर तक किसी सामयिक निर्णय से परे सम्पूर्ण परिस्थितियों के बारे में सोच रहा था। अगर ऐसा नहीं तो वह जैसा आदमी है, सामनेवाले से बातों के लिये शब्द-निर्णय में उसे इतनी देर नहीं होनी चाहिए थी। कुछ देर तक खोये रहने के बाद उसने सबसे पहली बात सोची कि, कह दे, दवा उधार ले रहा हूँ। लेकिन यह बहाना उसे बड़ा झंझट वाला लगा। '''एक बार बहाना बनाया तो उसे दोहमत में

पढ़ जाना होगा, बहाने पर बहाने……लम्बी बहस, उसे फँस जाना पड़ेगा। उसने कह दिया 'लो, एक भी पैसा नहीं है—का मतलब थोड़े होता है कि, उसके पास एक भी पैसा नहीं है।'………

उसके इस जवाब से महाजन थमथमा गया। उसे गुमान भी नहीं था कि, ऐसा भी जवाब होता है। महाजन ने उलटे ही हकलाते हुए पूछा—'मतलब कि…… तुम कहना क्या चाहते हो!'

मतलब कि,……(फुदन ने अपना एक हाथ कमीज की ऊपरवाली जेब पर रख लिया, क्योंकि दस का नोट जेब के मुँह से झांक रहा था।)

'रुपया है, लेकिन देने लायक नहीं है।'

'लायक का मतलब क्या होता है! मैंने तो कहा था कि दो और लो। तुम को भूखों थोड़े मरने दूँगा, फिर तो दूँगा ही।'

'हाँ मैं जो कमाता हूँ,वह सूद में लेते जाओ और हर हफ्ते मुझको नये-नये कर्ज दो। तुम्हारा कर्ज बढ़ता जाय, फिर इतना हो जाय कि मेरा सात पुश्त दबाता रहे। ई सब नहीं चलेगा। मैं अपनी कमाई खाऊँगा, कर्ज क्यों बढ़ेगा।'

'तब मेरे रुपये का क्या होगा? कहीं से लाकर दे दो, छुट्टी कर दो—एक साथ।'

'अरे जा, कहाँ की छुट्टी! बाल बच्चों का पेट काटकर इतना दिया, इतना कि, सब छुट्टी समझो!'

इतनी गर्म और तेज बातों के बाद भी गेट पर इन लोगों को घिर्द भीड़ न जमती, ऐसा नहीं हो सकता था। सूदखोर और कर्जखोर को घेर कर एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। तमाशबीन चुप ही थे, क्योंकि ऐसे मामलों में किधर का भी पक्ष लेना कठिन हो[illegible]मय पैसने

हैं। जुठन ने इस भीड़ को अपने पक्ष में महसूस किया और उसकी आवाज और भी तेज हो गई। इस पूरी स्थिति के दो ही विकल्प हो सकते थे- पहला यह कि, वह अपनी इज्जत को देखे और और महाजन का हाथ दबाकर कहे कि, जो कहोगे, मानूँगा, इस चौराहे पर बेआबरू मत करो। या इज्जत फजीहत की बात को गोली मार दे—इसमें छिपाने की क्या बात है, सब तो कर्ज खाते हैं—और तनकर कहे कि नहीं दूँगा, क्या करोगे ! तुमने मेरा खून चूस लिया है।""""""उसने दूसरा काम ही किया। जुठन ने महसूस किया कि इतने लोगों के होते महाजन उस पर हाथ नहीं छोड़ सकता या फुहड़ पातर नहीं बोल सकता। उसकी हिम्मत बढ़ गई। वह अन्दर से मजबूत हो गया। अगर महाजन ने हंगामे की हरकत की तो वह भी दो-चार हाथ देगा, काहे का लिहाज और भय ! महाजन भीड़ में कुछ लोगों से कहने लगा था—'हमीं कहीं के लखपती हैं। बाल-बच्चों का पेट काट कर जून-कुजून अपने-बेगानों का काम चला देते हैं """ बदले में दो पैसे लेते हैं। लेकिन ऐसे लोग तो थाप उठा देंगे। फिर कोइ किसी के काम कैसे आयेगा !'

जुठन आग बबूला हो गया, नथूना फड़काते हुए उसने कहा—'आप काँईयां है, मक्खीचूस ! अपने बाल-बच्चों को मारते हैं, फिर हमारे बाल-बच्चों को। जीव मार कर दो कट्ठे खेत किनते हैं, बनते हैं—मजदूर ! जाओ, मैं नहीं देता, करो मुकदमा मुझ पर !'

जुठन जानता है, वह मुकदमा नहीं कर सकता। बेलाइसेंसी महाजन है। जितना दिया था, उससे चौगुना ले लिया, फिर भी बाकी है। अभी तो सूद लेता है, मूल तो बाकी ही है। ऐसी की तैसी, अब ठेंगा दूँगा। भीड़ चीर कर जुठन निकल गया था और बड़बड़ा रहा था। वह खुद से दोहरे संवाद करते हुए जा रहा था। वह महाजन की ओर से खुद से प्रश्न भी करता और उत्तर भी देता। वह बिना किसी की

बीबी से बातें करने का सुख उठाता रहा है। इस तरह इनकार के शब्दों में बोलना बेइमानी नही है, बिलकुल सच्चाई है। आखिर इससे निपटने का और तो कोई रास्ता नहीं बचा है। वह कैसा पंच होगा जो तीन पाव की दाबी रखने पर पाव-भर भी नहीं दिलायेगा।

पंचों से वह बहस करना नहीं चाहता था, फिर भी उसे बहस में घसीट लिया गया। उसने कहा—'मैं पंचायत नही मानता।'

'क्यों,ऐसा तो कोई नही कहता। पंचायत को तो बड़े-बड़े दिग्गज मानते हैं और तुम···· '

'हां, मैं नहीं मानता। मेरा किसी भी पंच पर विश्वास नही। मैं किसी भी इन्साफ को इन्साफ नहीं मानता। पंच बनकर घूमने वाले सब खौवा-कमौवा हैं।'

पंच गुस्से से दांत पीसने लगे। ऐसे अपराधी से उनका पाला नहीं पड़ा था। उन्होंने संयत स्वर में ही कहा—पंचायत तो सरकार तक मानती है। तुम्ही क्यों नहीं मानोगे।

'मैं सरकार-टरकार की बात नही जानता, अपनी जानता हूँ।'

'ठीक है, मत जानो, लेकिन रुपया तो देना होगा। सब लोग जानते हैं, उसका है, हजारों गवाह हैं, तब तो देना ही होगा।'

'···· ···तो, है तो, आप लोग अपने घर से दे दीजिये। मेरे यहाँ तो नही है।

'········भई पंचायत तो इधर-उधर कुछ कम-व-बेश कर मामला चलाने की होती है, और······'

'····और यह साफ इनकार रहा है, यही न, और आप लोग पहले से ही कुछ दे दिलाने का फैसला किये बैठे हैं। तब कैसे होगा।'

जुठन की आवाज अधिक से अधिक व्यंगात्मक और कर्कश होती जा रही थी। महाजन तमतमा कर खड़ा हो गया। बोला 'ठीक है, किसी दूसरे आदमी को पंच मान लो।'

ओर देखे, पूरी तरह एक शव की मुद्रा में जा रहा था। वह वैसी ही हरकत करते हुए जा रहा था, जैसे गधे को कुकुरमखियों ने घर लिया हो।

महाजन ने कोई चारा न देख पँच बैठाया। उसने ऐसे मध्यस्थ लोगों को बुलाया, जिनके फैसले को ठुकराने का साहस बहुत कम लोग कर पाते हैं और उनका इन्साफ भी मशहूर है। दरअसल पेशेवर सूदखोरों-कर्जखोरों की तरह ही इस क्षेत्र में कुछ पेशेवर पँच भी हैं। इन पँचों को छोटी-बड़ी पँचायत के अनुपात से ही छोटी-बड़ी सलामी मिलती है, जो पान-बीड़ी से लेकर रुपयों में सौ-पचास तक की भी हो सकती है। ऊपर से यह प्रतिष्ठा कि हम जाने-माने लोग हैं। हमारी बातें मानने के लिये दूसरे बाध्य हैं। ऐसे ही लोगों की पँचायत बैठी थी और पान कचर रही थी। कई बुलावे के बाद भी जुठन नहीं आया। पँचों को क्रोध भी आ रहा था और अपनी असहाय स्थिति पर क्षोभ भी हो रहा था। उन्हें नहीं पता था कि जुठन ने जब इस तरह का फैसला लिया है तो वह अब बड़ा से बड़ा फैसला लेता जाएगा।

इस फैसले पर जुठन को कइयों ने बधाई दी। लेकिन कइयों ने इसके परिणामों की ओर भी संकेत किया। कुछ ने इसे बेइमानी—सरासर धोखा बताया। जुठन के दिमाग में यह तमाम बातें चक्कर काट रही थी। वह उदिग्न अवस्था में ही पँचायत में गया। लेकिन बाहर से वह बिल्कुल शांत और गम्भीर था। पंचों को खुशी हुई कि चलो आगे चाहे जो हो इसने हमारी लाज रख ली, बुलाने पर आ गया। लेकिन तब तक उसने और भी बड़े फैसले कर लिये थे। उसने कहा कि मैंने इस आदमी को रुपये दे दिये हैं। कोई पुराना वैर सधाने के लिये ही वह यह सब जाल रच रहा है। इस पर पँच उससे जिरह करने लगे। वह लापरवाही से तमाम बातों से इनकार करता गया।

उसने सोचा था, वह जो कर रहा है, ठीक कर रहा है। उसने यह भी सोचा कि रुपया मांगने के बहाने महाजन रोज आधे घंटे तक मेरी

बीबी से बातें करने का सुख उठाता रहा है। इस तरह इनकार के शब्दों में बोलना बेइमानी नही है, बिलकुल सच्चाई है। आखिर इससे निपटने का और तो कोई रास्ता नहीं बचा है। वह कैसा पंच होगा जो तीन पाव की दावी रखने पर पाव-भर भी नही दिलायेगा।

पंचों से वह बहस करना नहीं चाहता था, फिर भी उसे बहस में घसीट लिया गया। उसने कहा—'मैं पंचायत नही मानता।'

'क्यों,ऐसा तो कोई नही कहता। पंचायत को तो बड़े-बड़े दिग्गज मानते हैं और तुम····'

'हां, मैं नहीं मानता। मेरा किसी भी पंच पर विश्वास नहीं। मैं किसी भी इन्साफ को इन्साफ नही मानता। पंच बनकर घूमने वाले सब खौवा-कमौवा हैं!'

पंच गुस्से से दाँत पीसने लगे। ऐसे अपराधी से उनका पाला नहीं पड़ा था। उन्होंने संयत स्वर में ही कहा—पंचायत तो सरकार तक मानती है। तुम्ही क्यों नही मानोगे।

'मैं सरकार-टरकार की बात नही जानता, अपनी जानता हूँ।'

'ठीक है, मत जानो, लेकिन रुपया तो देना होगा। सब लोग जानते हैं, उसका है, हजारों गवाह हैं, तब तो देना ही होगा।'

'·····'तो, है तो, आप लोग अपने घर से दे दीजिये। मेरे यहाँ तो नही है।

'·········भई पंचायत तो इधर-उधर कुछ कम-व-बेश कर मामला चलाने की होती है, और·······'

'····और यह साफ इनकार रहा है, यही न, और आप लोग पहले से ही कुछ दे दिलाने का फैसला किये बैठे हैं। तब कैसे होगा।'

जुठन की आवाज अधिक से अधिक व्यंगात्मक और कर्कश होती जा रही थी। महाजन तमतमा कर खड़ा हो गया। बोला 'ठीक है, किसी दूसरे आदमी को पंच मान लो।'

'दूसरा तीसरा क्या, मैं पंच नामक जीव से नफरत करता हूँ।'
'कारखाने के लेबर बाबू को भी नहीं मानोगे ?'
'तुम यूनियन के सेक्रेटरी को मान लो, मैं तैयार हूँ।'
'वह तो बेइमान है. उसने मेरा कितना रुपया मरवा दिया।'
'उसी तरह सब बेइमान हैं,तुमने अपनी पाकिट से कुछ लोगों को निकाल कर तख्त पर बैठा दिया है, कहते हो पंच हैं।'
'देखो, पंचों का अपमान मत करो।'

लेकिन इसके पहले कि जुठन कुछ जवाब देता, पांचों पंच उठकर उसे पीटने लगे थे। □□

मुर्दों का रखवारा

*

रात के करीब साढ़े ग्यारह बज रहे थे। फूदन तीन रिक्शों पर चारपाई, बिस्तरा, हाँड़ी, बाल्टी, कोयला, चूल्हा आदि लादे बीबी, दो बेटियों और बेटे के साथ चला जा रहा था। फूदन का पूरा खानदान पैदल ही चल रहा था। सामान अधिक होने के कारण रिक्शे वाले भी पैदल ही चल रहे थे।

मैं एक चायखाने में फुट-पाथ पर रखी बेंच पर बैठा था। रास्ता करीब-करीब सुनसान ही था। चायखाने में भी बहुत कम लोग थे। फूदन जब मेरे करीब आया तो मेरी उत्सुकता जगी। मैंने पूछा—'क्यों फूदन चाचा, इतनी रात गये सवारी निकली है ?'

फूदन रास्ते से मेरे करीब खिसक आया, धीरे से बोला : तुमसे क्या छल है। कल एतवार है न ! सबेरा होते-न-होते जमदूत आ घेरेंगे। लपेगा—गला दबा देंगे। उसके बाद जो हल्ला-गुल्ला, गाली-गलौज, धड़-पकड़ होगी···कि मत पूछो। ······ चल दिया हूँ, कल और हफ्ते भर तो ठीक से बीतेगा।

हफ्ते भर खोजते रहेंगे—साले !

चल तो दिये हो, मगर रहने का कोई ठौर-ठिकाना भी है या···!
अरे नहीं भाई, इतना बड़ा शहर है। कहीं-न-कहीं मिल ही जायगा।
अब वह चलना ही चाहता था कि मैंने पूछा—आखिर इतना कर्ज तब लेते ही क्यों हो?
उसने बेचैन होकर मेरी ओर देखा और कहा—सब खाता थोड़े हूँ। एक से लेकर दूसरे को देता हूँ। कर्ज लेकर ब्याज तक भरता हूँ।
मैं उसकी हालत पर अफसोस करूँ कि तब तक वह सिर का गमछा ठीक करता हुआ चल दिया—रिक्शों के पीछे-पीछे।
मैंने चिल्लाकर कहा—फिर भी कोई अंदाज बताओ। 'भागा चलाने' की जरूरत पड़ेगी। मैं खोजूँगा।
उसने भी चिल्लाकर ही कहा—शायद कब्रिस्तान में जगह मिले।
चायखाने में बैठे हुए कुछ लोग जोर से हँस पड़े।
मैं फूदन को जाते देखता रहा। वह अब कुछ दूर निकल गया था। वह अपने कुनबे और तीन रिक्शों के साथ प्राय: सुनसान रास्ते पर चला जा रहा था। मुझे लगा—इस रात का वह आखिरी मुसाफिर है। न जाने, कहाँ रुकेगा।

मैं फूदन को बचपन से जानता हूँ। वह मेरा नहीं, मेरे अब्बा का साथी है। वह कभी इस शहर से गायब हो जाता है और ६ महीने-साल भर में लौट आता है। मैंने उसे चटकल में तांत चलाते देखा है, कागज कल में कोयला और बांस ढोते देखा है, बैंड-पार्टी में पिस्टीन बजाते देखा है, दो रुपये रोज पर कांग्रेस के चुनाव-जुलूस में झंडा ढोते देखा है, गहने की दूकान पर दरवानी करते देखा है, महाजनों का तगादेदार बनकर लाठी के हाथों कर्ज वसूल करते देखा है, खोला बाड़ी में मजदूरों के बीच ताड़ी बेंचते हुए देखा है और कब्रिस्तान का रखवारा बनकर रात-रात भर लोहबान जलाकर दुआ माँगते और मुर्दों की रखवारी करते हुए भी देखा है।

वह कहीं भी साल-दो साल जमकर काम नहीं करता। बाहर का काम तो कोई क्या जमकर करेगा, कारखाने में भी पाँच वर्ष से अधिक असालतन काम नहीं किया। वह कहता है—चटकल का काम और वह भी असालतन! क्या मिलेगा? और प्राविडेण्ट फण्ड का पैसा उठाकर चल देता है। किन्तु असलियत यह है कि महाजनों से तङ्ग आकर ही वह पैसा उठाता है। कभी तो उन्हें कुछ दे देता है और कभी सब लेकर भाग जाता है।

मुझे वे दिन याद है जब मैं बिलकुल नया-नया कारखाने में काम करने गया था। फूदन की जोड़दारी में ही मुझे ताँत मिला था। कई दिन ऐसा होता कि जब मैं अपनी ड्यूटी पर जाता तो वह मुझे वापस कर देता: "तुम अभी बच्चे हो, अधिक मेहनत मत करो। मैं दोनों शिफ्ट चला लूँगा।"

फिर मैं खड़ा-खड़ा उसे देखता रह जाता। वह हलके से मुझे धक्का देता: "ताकते क्या हो, यह 'फेसुआ' साँप है साँप! एक दिन तुमको भी काट खायगा। तुम्हारे बाप को इसने ही काटा है। अब वह नहीं रहा। अब उसका ताँत दूसरा कोई चलाता है। वह रहा उसका ताँत!"—और फूदन ताँत की ओर उँगली से इशारा करता: "वही वह खून उगल-उगल देता था। आखिर वहाँ से एक दिन उठा कर गया।"
—और फिर मैं फूदन को चाय-निमकी देकर चला आता। हफ्ते के दिन जब मैं अपना हफ्तेवाला लिफाफा खोल कर फूदन के आगे पसार देता तो वह आँखें तरेर कर मेरी ओर देखता और मेरी गर्दन में हाथ लगा कर ढकेल देता: "मुझे रुपये देगा, दे, दो हजार कर्ज है, ले आ।"

मैं अवाक् सिर नीचा किये चला आता। जब मैं अच्छा काम करने लगा, 'तेज' ताँती कहलाने लगा तो फूदन गर्व के साथ दूसरों से कहता:

देखो, मेरा चेला है। *कारखाने में सबसे अधिक कपड़ा-काटनेवाला।*—फिर मायूस हो जाता : लेकिन साले, उसे सरदारी नहीं देंगे।

फूदन के निराले ढंग ने भी उसे पूरे शहर में परिचित बना दिया था। वह हमेशा लुंगी पहनता। पर लुंगी सिलवाता नहीं। मद्रासियों की तरह ही बांधे रहता। लुंगी घुटने से नीचे कभी नही आती। सवा दस आने रिटेल दाम की मार्कीन ही उसकी कमीज बनती। वह उसे कभी भी दर्जी के यहां न सिलवाता। इस मामले में अपनी बेटियों की भी मदद नही लेता, जब कि उसकी बेटियां दूसरों के कपड़े सीती चलती। फूदन अपने हाथ से कपड़ा काट कर सूई डोरे से सी लेता। मैं उसे जब कभी नई कमीज पहने देखता तो मुझे हँसी आ जाती—जैसे कफन पहना हो!

फूदन मुझे एक हफ्ते के अन्दर ही बता गया कि वह अब मागा नही चलायेगा, उसे कब्रिस्तानवाला फकीराना धन्धा मिल गया है : लोहबान जलाने और दुआ मांगने का धन्धा!

मैं एक हफ्ते के बाद फूदन के यहाँ गया। वह इतवार की रात थी। करीब आठ बजा था। कब्रगाह में मरघट जैसा ही अन्धेरा था। मैं रास्ते से गेट खोज कर कब्रगाह के अन्दर चला तो गया, किन्तु अन्दर कुछ नजर नहीं आ रहा था। बांसों के जंगल के कारण अन्धेरा और घना हो गया था। कांटेदार तारों से घिरा हुआ जमीन का वह टुकड़ा *किसी विशाल कब्र के खुले मुँह की तरह प्रतीक्षा-रत था*—कि कोई इतना बड़ा ही मुर्दा आयगा और उसे भर जायगा। छोटी-छोटी ढक्कन बन्द कब्रें कांटेदार तारों से घिरी निश्चिन्त सोई थीं—जैसे इस पहरेदारी में मृत विद्रोही आत्माएँ चाह कर भी विद्रोह नही कर सकेंगी।

किसी-किसी कब्र पर फरिश्तों की तरह बड़ी ही मुस्तैदी से तैनात छोटी-छोटी मीनारें खड़ी थीं—जैसे फरिश्ते आज ही उन मुर्दों की छाती पर सवार हो गये हों और कयामत के पहले ही हिसाब ले लेंगे।

इस कब्रिस्तान को मैंने दिन में भी देखा है। दो-ही चार कब्रें ऐसी हैं जिन पर से घासों के जंगल और कांटों की झाड़ियाँ हटी होती हैं, उन पर चादरें चढ़ी होती हैं। बाकी सब पर तो—'बादे सबा चढ़ाती है चादर गुबार की।'

कुछ ही देर में मुझे लगा कि यहाँ सिर्फ मच्छड़ ही नहीं मनमना रहे हैं, बल्कि कुछ आदमी भी कब्रों के बीच मनमना रहे हैं। सचमुच ही कुछ आदमी घास और कांटों की झाडियों को हाथ-पाँव से झाडते हुए कब्रों के बीच घूम रहे थे। वे बहुत ही धीरे-धीरे बोल रहे थे। ठीक मच्छड़ों की मनमनाहट जैसी ही उनकी आवाज होती थी। जब वे फूदन को गाली देते तब ही उनकी आवाज स्पष्ट होती और अर्थ धारण करती थी। मैं समझ गया कि फूदन यहाँ नही है और ये लोग निश्चित रूप से कुछ खोज रहे हैं और मैं तेज कदम चलता हुआ कब्रिस्तान से निकल आया।

वहाँ से मैं सीधे फूदन के घर गया। रेलवे लाइन के पास ही वह एक बाड़ी में रह रहा था। मेरे मन में यह बात जम गई थी कि कोई खास कारण होने पर ही फूदन इस समय कब्रिस्तान में नही है। नहीं तो वह अपनी डिवटी का पक्का आदमी है।

जब मैं उसके घर के सामने गया तो देखा—वह अंधेरे में ईंट के टुकड़ों के टीले पर बैठा था। मैं उसके बिलकुल समीप चला गया। फिर भी वह बैठा ही रहा। मुझे लगा—मुझे शायद पहचाना नही। मैंने पूछा—यहाँ क्यों बैठे हो?

फिर भी वह चुप रहा।

अब मेरी शंका बढ़ गयी। मैंने फिर उसे टोका। फिर भी वह हिलाडुला नहीं, कुछ बोला नहीं। मैंने झुक कर देखा, वह अपने हाथ में एक टूटी तलवार लिये था। पुरानी-काली-सी तलवार जिसका आधा फलक टूट गया था।

फूदन के हाथ में तलवार देखकर मुझे हँसी आ गई। और झुकते हुए मैंने पूछा—यह तलवार लिये क्यों बैठे हो, इससे तो किसी की गर्दन भी नहीं कट सकेगी।
फूदन तन गया—आज तुम को किसने बुलाया, जाओ, आज कतल की रात है। एक-एक की जान जायगी।
और उसने अपनी टूटी तलवार को उलट-पलट कर देखा।
अन्धेरे के मोर्चे पर डटे हुए टूटी तलवार के सिपाही को देख कर मुझे अचरज हुआ। उसकी बीबी ने पीछे से आकर मुझे धीरे से बताया कि लड़की सिनेमा गई है, वह उसी को मारने के लिये बैठा है। मिन्नत करते हुए उसने कहा—इसे किसी तरह यहां से हटाओ। अब नौ बजेगा, लड़की आयगी। क्या ठीक, कुछ कर बैठे।
किन्तु मैं जानता था, जो आज तक एक मक्खी भी न मार सका, वह लड़की को तो खैर क्या मारेगा। किन्तु कुछ हंगामा तो अवश्य खड़ा कर सकता है। मैं फूदन के पास चला गया और कुछ कठोर स्वर में बोला—कुछ लोग कब्रिस्तान में बांस की झाड़ियों को पीट रहे हैं और तुम्हें गाली दे रहे हैं। बताओ इसी समय अगर मियां जी आ जायँ तो क्या होगा ?
फूदन के हाथ से तलवार छूट कर गिर गई! वह डगमगाता हुआ खड़ा हो गया—तब ?
तब और क्या ?
देखो, सालों से पचास बार कहा है कि कब्रगाह में ताड़ी नहीं रखता। उधर कब्रगाह से बाहर लाइन के किनारे वाले बाँस के नीचे के खन्दक में ताड़ी रखता हूँ। तब साले कब्रगाह में खोज रहे हैं। मेरी नौकरी गई। न, ऐसे गाहक नहीं चाहिये।
फूदन वहीं तलवार छोड़ कर मेरे साथ चलने लगा। मुझे लगा, इतनी ही देर में वह तलवार, लड़की का सिनेमा जाना, अपना क्रोध, सब भूल..

गया। उसे सिर्फ कब्रिस्तान, ताड़ी, गाहक और मियाँ जी ही याद रहे। वह सीधे कब्रिस्तान में जाना चाहता था किन्तु मैं उसे समझाते हुए चायखाने में ले गया। न जाने कैसा भय और आतंक उसके चेहरे पर छा गया था! वह एक बार कब्रिस्तान में जाने की जिद् कर रहा था। वह बार-बार अपने दाहिने गाल को हाथ से दाब रहा था। बहुत बातों के बाद जब मैं कब्रिस्तान की ओर से उसका कुछ ध्यान हटा सका तो उसने कहा—दाँत में दर्द है।

मैंने कहा—चीना के यहाँ जाकर दाँत उखड़ा दे।

आगे के दाँत तो खैनी ले गई। अब बगल के दाँत चीना को दे आऊँ?—वह हँसना चाहा, मगर उसके चेहरे पर हँसी न आ सकी। मैं कितने दिनों से देख रहा हूँ, फूदन के यहाँ से हँसी विदा ले चुकी है। वह इतना व्यस्त रहता कि उसे हँसने की फुरसत नहीं मिलती। किन्तु साथ ही साथ बहुत चिन्तित होकर बात करते हुए भी मैंने उसे बहुत ही कम देखा है। उसकी बड़ी लड़की जब एक स्पिरिगिया छोकड़े के साथ पाकिस्तान भाग गई थी, तब भी वह चिन्तित या क्रोधित होकर बात नहीं करता था—जैसे दूसरों की चर्चा हो, घटना में उसका निजी हिस्सा कुछ भी न हो। एक ही बात वह कुछ चिन्तित होकर कहता था—पहले तो लोग नेपाल भागते थे। यह पाकिस्तान मुसीबत बना। कुछ भी यहाँ किये, बचने के लिये पाँच कदम चल दिये। कहाँ गये? तो पाकिस्तान! और सिर्फ मुसलमान ही थोड़े जाते हैं। सुना वह बलराम भी खून करने के बाद पाकिस्तान ही गया। बस देखा तो, सब जरायमपेशा लोग पाकिस्तान ही भागे जा रहे हैं। एक ही गाँव को दो टुकड़े में शायद इसीलिये बाँटा गया था।—ऐसी बातें कहते वक्त फूदन के स्वर में निश्चित रूप से चिन्ता होती थी। तब लगता था मस्तान और औघड़ की तरह जिन्दगी जीने वाला यह इन्सान ऐसी बातें कैसे सोचता है। चायखाने में चाय का गिलास उसके हाथ में देने के बाद उसने गिलास

रख दिया। फिर मेरी ओर देखते हुए कहा—इस मियाँ जी को कब्रगाह कमेटी का सेक्रेटरी किसने बनाया?

—मिटिंग से बना होगा।

—हट सकता है कि नहीं?

—मिटिंग से हट सकता है।

—मिटिंग कब होगी?

—यह तो साल भर पर होती है। लेकिन क्यों?

—दाढ़ी रखने को कहता है। नहीं तो नौकरी से हटा देगा। और वह अपने हाथ दाढ़ी पर घुमाने लगा""जैसे सचमुच दाढ़ी निकल आई हो और नूरे खुदा को वह सहला-सहला कर चूम रहा हो।

उसने कहा""देखो उसी के डर से नमाज तो पढ़ने लगा हूँ। लेकिन मैंने साफ कह दिया है""जाइये मियाँ जी, मैंने भी हदीस पढ़ी है। दाढी रखना सुन्नते रसूल है। कोई फर्ज नहीं कि गम हो।

मैंने कहा: दाढ़ी फर्ज-सुन्नत चाहे जो हो। लेकिन मियाँ जी तो इसी बहाने हटा देगा। तब क्या होगा?

'तो क्या दाढी रख लूँ, छोटी-सी फ्रेंचकट?' इस बार फूदन सचमुच चिन्तित हो गया। वह कई क्षण अपनी आँखों में जिज्ञासा और अनिश्चय भर कर मेरी ओर देखता रहा।

मैंने कहा: मियाँजी अगर हटाने पर ही तुल गया होगा तो दाढ़ी रखने के बाद भी कोई दूसरा बहाना ढूंढ निकालेगा। और तुम्हारा ताड़ीवाला बिजनेस तो खत्म होने को नहीं। तब क्या दाढ़ी लेकर ताड़ी बेचने बैठोगे।

""सो तो है! दुविधा में फूदन अपना सिर खुजलाने लगा। यह मेरी ओर उसी जिज्ञासा भरी नजरों से अब भी देख रहा था—जैसे इस जटिल समस्या का समाधान मैं ही खोज निकालूँगा। फिर एक सप्ताह के बाद मैं कब्रिस्तान में गया। मैंने पहले ही देख लिया था कि कब्रिस्तान

में केवल फूदन ही नहीं है, बल्कि और भी कई आदमी खड़े हैं। और मैं बाहर ही रुक गया। पहले मुझे लगा कि जनाजा लेकर आनेवाले लोग हैं। किन्तु बाद में कुछ ऐसे चेहरे पहचान में आये थे जो कतई किसी जनाजे के साथ आनेवाले नहीं थे। वे ऐसे चेहरे थे, जो जिन्दा हों तो खुद के जनाजे में भी शामिल न हों।
किन्तु बाद में मैंने देखा कि मियांजी भी कब्रिस्तान में मौजूद हैं तो मैं तेज कदम चलता हुआ ही कब्रिस्तान के अन्दर चला गया।
जाते-जाते ही मैंने सुना मियांजी कह रहे थे—तुम्हें खुदा से डर नहीं लगता ?
'लगता तो है, मगर क्या करूं।' फूदन मियांजी की ओर बिना देखे ही जवाब दे रहा था। उसने अपने को अनावश्यक कार्य में व्यस्त कर लिया था। वह एक पुरानी कब्र पर उपजी झाड़ियों को उखाड़-उखाड़ कर फेंक रहा था।
मियांजी की मुख-मुद्रा कठोर और दृढ हो गयी थी। अब वे कुछ कहने ही वाले थे कि बड़ी मस्जिद के लाउडस्पीकर पर मगरीब की अजान सुनाई पड़ी। मियांजी कुछ बोल न सके और फूदन भी कुछ बेचैन-सा हुआ। होठों-ही-होठों में वह कुछ बुदबुदाया। मुझे लगा—जैसे मोअजिन को ही कुछ कह रहा है और वह लोहबान जलाने चला गया। लोहबानदानी में टिकिया सुलगाता और बान छिड़कता फिर वापस आ गया। उसने अपनी जेब से एक मैली कबरनामा टोपी निकाल कर पहन ली। फिर लोहबान-दानी लेकर कब्रों के बीच घूमने लगा। वह होठों में दरुद पढता जा रहा था। कब्रों के बीच घूमते हुए वह टोपी ऐसी लग रही थी जैसे एक छोटा-सा कब्र उसके सिर पर सवार हो।
मैं एक झुके बांस को पकड़ कर खड़ा हो गया था। मियांजी वहां खड़े और लोगों से शायद बात करना नहीं चाहते थे। मुझे देख कर वे मेरे पास खिसक आये। उन्होंने मेरे बिल्कुल करीब आकर कहा : तुमको यहां देख कर ताज्जुब होता है। तुम भी यहां !

'लेकिन आप भी तो यही हैं।' मैंने मियांजी की ओर भरपूर नजरों से देखते हुए कहा।

'बरखुरदार, मैं तो देखने आया हूँ। यह मेरी जिम्मेदारी है। इस फूदन के बच्चे के बारे में बड़ी गजब की खबरें उड़ रही हैं आखिर यह कब्रिस्तान है, पाक जगह।

तबतक फूदन बाँस की झुरमुटों से अन्तिम चक्कर काट कर वापस आ गया और दुआ मांगने लगा—'आह जाती है फलक पे रहम लाने के लिये""""।'

मैंने मियांजी को खड़े देखकर कहा : आपकी नमाज कजा हो रही है। उन्होंने झुंझला कर जोर से जवाब दिया : कजा हो रही है तो हो। मगर आज इससे पूछ कर जाऊँगा।

मैं तो कुछ न बोला। मगर फूदन ने बड़े ही संयत स्वर में कहा : उनसे पूछिये, उधर लाइन के उस पार लाठी लेकर जो बैठे हैं। मुझको मारने के लिए बैठे हैं। वे कब्रगाह में जादू जगाने के लिये आते थे। इस्म-आजम और उल्टे सुरे-याशिन पढ़ते थे। आप ही के कहने पर मैंने उन्हें रोक दिया है। अब वे मुझे मारेंगे।

अन्धेरे से पहले ही अन्धेरे में डूबजानेवाले उस कब्रिस्तान में अब तक शाम गहरा गई थी। आकाश और आसपास की तमाम लाली मिट गई थी। रेलवे लाइन के किनारे किनारे लोग शहर की ओर जाने लगे थे। चिड़ियों के कलरव से कब्रिस्तान गूँजने लगा था। फूदन और मियांजी के बीच बहस और झड़प लगातार हो रही थी।

फूदन ने बड़े ही विद्रूप स्वर में कहा था : 'पैंतीस रुपये महीने पर कहते हैं, यह मत करो, वह मत करो। मैं ताड़ी बेंचता या कुछ करता हूँ, यहाँ से बाहर करता हूँ।' और वहाँ आधे दर्जन खड़े लोगों ने गवाह जैसे हुँकारी भर कर फूदन का समर्थन किया। जाहिर है, वे ताड़ी के ग्राहक थे।

फिर मैं वहां से चला आया था। मुझे लगा था—आज फूदन अलग हट कर मुझसे बातें नहीं कर सकेगा। और सबसे अलग हटकर फूदन से निजी बातें करने में मुझे शुकून मिलती रही है। वह मेरा उस्ताद है और मैं उसका शागिर्द—इसे हम दोनों ने हमेशा याद रखा है।

उस शनिवार की रात में बहुत ही चहल-पहल थी। शहर में कजली-कौवाली और नाच की धूम थी। लोग झुण्ड के झुण्ड बड़े रास्ते पर आ-जा रहे थे। चाय-पान की तमाम दूकानें खुली थीं। साढ़े ग्यारह बजे रात की कारखाने की बंशी बज चुकी थी। कारखाने की अन्तिम शिफ्ट भी बंद हो गई थी। मैं उसी चायखाने की बाहर वाली बेंच पर बैठा था। बारह बजे रात से अधिक रात हो रही थी। अचानक देखा कि फूदन अपने पूरे परिवार और तीन रिक्शों के साथ चला आ रहा था। लेकिन मुझे अचरज नहीं हुआ। अचानक जरूर लगा। इस बार भी वही दृश्य था। रिक्शेवाले और उसका पूरा परिवार पैदल चल रहा था। इस बार उसके सिर पर गमछा के बजाय वह कब्रिस्तान की कब्रनुमा टोपी थी। इस बार वह सफेद लुंगी के बदले चारखानेदार लुंगी पहने था। किसी के जनाजे में ही उसे लुंगी मिली थी।

लेकिन इतनी रात को घर क्यों छोड़ दिये ?

घर भी तो उसका ही था। और नहीं चल देता तो जादू-जगानेवाले ओझा-गुनी आज रात को जरूर मार देते।

फिर कुछ रुक कर उसने ही कहा : मियाँजी का एक खास आदमी था। वह आज सुबह से ही कब्रगाह में बैठा था। सुना, तीस रुपये पर ही काम करेगा।

पर मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या हूँ। मैंने उससे चाय पीने के लिए कहा। मगर वह इनकार कर गया और रिक्शों के साथ चलता रहा। कुछ दूर तक उसके साथ चलने के बाद मैं खड़ा हो गया। वह रिक्शों के साथ आगे बढ़ गया और भीड़ में खो गया। □□

पत्थर की आँख

★

पूरा शहर जानता है, मैं गुंडा हूं। मेरा एक दल है। मेरे दल को हड़ताल तोड़ने को दावत कारखानेदार देते हैं और रेलवे यार्ड में वैगन तोड़ने को दावत पुलिस देती है। कोई एक आदमी अपने दोस्त की हत्या करने के लिए मुझे ही बुलाता है और एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को उठा लाने के लिए रात के अंधेरे में मुझे ही भेजता है। यह सब काम मैं पेशे के रूप में करता रहा हूं, जैसा कि आप लोग नौकरियाँ करते हैं। इन कामों को कभी भी मैंने अपराध नहीं माना,क्योंकि यह मेरी जीविका है। हत्याएं करने के बाद भी मेरे माथे पर कभी खून नहीं चढ़ा—जैसा कि आप लोग कहते हैं, खूनी के दिमाग पर बहुत दिनों तक खून चढ़ा रहता है और वह आधे पागल जैसा ही व्यवहार करता है। लेकिन यह ख्याल गलत है। खून के बाद मैं चायखाने में बैठकर चाय पीता रहा हूँ, फिर सिनेमा देखने चला गया हूं। हाल में रोमान्स के नजारे मुझे अच्छे लगे हैं, कामेडी सीनों पर मैं हंसा हूँ। साथ ही कभी भी इन कामों को पाप समझ कर इन्हें स्वीकार लेने के लिए गिरजे में नहीं गया हूँ और न कभी हाथ जोड़कर क्राइस्ट के सामने गिड़गिड़ाया ही हूँ।

आपको आश्चर्य होगा कि अभी मैं यह सब क्यों कह रहा हूँ, मैं क्राइस्ट से नहीं डरता। अगर डरता होता तो यह सब बातें आप से नहीं कह गिरजे के चौखट पर सिर पटकता और सब कुछ क्राइस्ट से ही कहता। मैं गिरजे में इसलिए नहीं जाता कि मेरे पापों का प्रायश्चित हो जाय और क्राइस्ट मुझे क्षमा कर दें (दरअसल में इस पचड़े में पड़ता ही नहीं।) बल्कि इसलिये जाता हूँ कि मैं क्रिश्चियन हूँ। ठीक उसी तरह का क्रिश्चियन हूँ, जिस तरह नगीना है। मेरा बाप मुसलमान से क्रिश्चियन हो गया था। क्योंकि वह एक पादरी का खानसामा था। ठीक उसी तरह नगीना की मां भी हिन्दू से क्रिश्चियन बन गई। वह भी पादरी की नौकरानी थी। पादरी की मौत के बाद नगीना की माँ शहर भर में पादरिन कहलाने लगी थी और उसने इस बदनामी से बेहद फायदा उठाया। आज गिरजा पर उसका पूरा कब्जा है।

आपसे भी मैं इसलिए कहना चाहता हूँ कि आप मेरे पिछले जीवन को देखते हुए मुझपर विश्वास करना भले ही न चाहें, लेकिन सच्चाई है कि मैं बिलकुल निकम्मा हो गया हूँ। पिटे पिल्ले को तरह ही मैं कायर और डरपोक हो गया हूँ और मैं कहीं बदला हूँ तो इसलिए नहीं कि मुझमें सुबुद्धि आ गई है, बल्कि इसलिये कि उस लायक अब मैं नहीं रहा। अब मैं पराजित कुत्ते की तरह ही जब अपने किसी हमपेशे को देखता हूँ तो दाँत निकाल देता हूँ और आत्मसमर्पण करता हूँ। वह थोड़ी देर मुझको गुर्राता है और मुझको मेरी स्थिति का एहसास करा कर चला जाता है। फिर भी मेरी विवशता है कि उनको छोड़ नहीं पाता। मुझको भूख सताती है और उनके साथ हो लेता हूँ। क्योंकि भूख मिटाने का कोई भी और रास्ता मुझको नहीं सिखाया गया और मैंने सीखा भी नहीं। हालांकि अस्पताल से आने के बाद वे मुझको काम का आदमी नहीं समझते और मेरी जरूरत भी महसूस नहीं करते। मैं अपनी गरज से उनके साथ हो लेता हूँ। क्योंकि मैं ऐसा न करूँ तो

छाने बिना मर जाऊँ। और मुझे मौत से बेहद भय लगता है। अस्पताल से आने के बाद मेरा यह भय और भी बढ गया है।

मेरे दोस्तों ने ही मेरी आँख निकाल ली थी और मैं महीनों अस्पताल में पड़ा रहा। उन्होंने अभी तक मुझको नही बताया कि ऐसा क्यों किया? हम चार थे। लेकिन अचानक ही एक दिन मैंने देखा कि वे तीन हो गये और मैं अकेला। एक दिन उन्होंने कहा था—हम तुम्हारी एक आँख निकाल लेंगे। मैं नही समझ पाया कि वे ऐसा क्यों करेंगे? मेरे और उनके बीच ऐसा कुछ नहीं था जिसके चलते वे ऐसा करते। अगर नगीना से प्यार करने की बात कारण हो तो इसमें किसी को एतराज न था कि चारों एक साथ उससे प्यार कर सकते थे। पिछले दिनों के व्यवहारों से सबों ने साबित किया था कि नगीना से सामूहिक प्रेम जायज है। फिर भी इस बारे में मेरी किसी स्पेशल स्थिति से उन्हें एतराज था तो वे कह सकते थे। दर-असल वे भी इन बातों को नोटिस लेने वालों में नहीं हैं फिर भी उन्होंने ऐसा किया। मैंने समझना चाहा था—कौन-सा कारण था यह!

एक दिन वे चायखाने से उठाकर मुझे सड़क तक लाये और भरे चौराहे पर ही मुझको पटक दिया था और सरेआम ही मेरी बायीं आँख निकाली थी। इसके अलावा मेरा कुछ न बिगाड़ा था। मुझे मारा नहीं था। ठीक उसी तरह, जिस तरह कुंआरे बछड़े को बैल बनाने के लिये बछड़े का मालिक बड़े प्यार से ही उसका अंडकोष निकाल देता है, जिससे बछड़ा सांढ़ न बन सके बैल बने, पता नहीं, उनके इस कारनामे में बछड़े के मालिक जैसा प्यार है या नही,लेकिन उन्होंने मुझे बैल बना दिया है। उन्होंने मुझे चीखने का भी मौका नही दिया था। आती हुई बसें और रिक्शे रुक गये थे। चलनेवाली भीड़ कतरा कर पटरी पर चलने लगी थी। उन्होंने मुझे रास्ते के बीचो-बीच पटका था। दो ने मिलकर मेरे हाथ-पाँव पकड़ लिये थे और एक मेरी गर्दन पर सवार हो चायखाने से

विशेष रूप से इसी काम के लिये लाये गये चाय चलानेवाली चम्मच को मेरी बायीं आँख में घुसेड़ दिया था और रेशम के कोए की तरह मेरी आँख की पुतली बाहर निकल आई थी। मैं नहीं देख पाया कि मेरी आँख की पुतली सड़क पर लुढ़कती हुई किसी लारी के चक्के के नीचे आ गई या कोई बच्चा खेलने की खूबसूरत चीज समझ कर उठा ले गया या कोई कुत्ता निगल गया या कोई चील झपट्टा मार ले गई। मैं कुछ नहीं जानता, मुझे अस्पताल में ही होश आया था। यह भी पता नहीं कि किसने मुझे अस्पताल पहुँचाया।

ओह, मेरी आंख का पत्थर बेहद दर्द करता है। मैं नही जानता था कि पत्थर में भी दर्द होता है। डाक्टर ने कहा था, दर्द होने पर आंख सेंक लिया करो। लेकिन मैं ऐसा नही करता। मैं सोचता हूँ—दर्द थोड़ी देर बाद खुद से कम होता हुआ खत्म हो जायेगा। साथ ही मैं सोचता हूँ, यह काम किसी दूसरे का था—कोई दूसरा, कोई औरत, वह मेरी मां, मेरी बीबी या मेरी बहन होती जो मेरी आंख के पपोटे को सहलाती और रूई के गर्म फाहों से सेंकती। लेकिन यह सुख मेरे लिये सपना है। मेरा उस तरह का अपना कोई नहीं, दर असल मैं जब इस तरह की कल्पना करता हूँ तो मेरे सामने नगीना और उसकी मां होती है। लेकिन अस्पताल से आने के बाद से इस तरह की कल्पना से भय लगने लगा है। शायद उन्होंने कहा था कि वे नगीना और उसकी मां के कारण ही मेरी आँख निकाल रहे हैं, या न भी कहा हो, यह बात खुद से मेरे मन में बैठ गई हो। मुझे शक है नगीना इस बात को जानती होगी कि उन्होंने मेरी आंख क्यों निकाल ली थी।

मैं रात में बाजवक्त आंख के दर्द से बेहद छटपटाता हूँ। डाक्टर ने पत्थर को पपोटे में ठीक से नहीं बैठाया है। शायद पत्थर भी सस्ता और बेमेल है। मैं इसका दाम नहीं जानता। सुना है, उन्हीं तीनों ने अस्पताल में पत्थर का दाम जमा कर दिया था। जब दर्द सहा नही जाता तो मुझे

पत्थर से बेहद नफरत होती है। जो करना है, पत्थर निकाल फेंकूं और दर्द से बचूं। आँख के गड्ढे को मारा शहर देखे, और पुकार-पुकार कर कहूँ—सुनो लोगो! मेरे दोस्तों ने ही मेरी आँख निकाल ली थी। वह बूढ़ी पादरिन इस राज को जानती है। शायद यह मैं सही सोचता हूँ कि मुझे बदसूरत बनाने के लिये ही ऐसा किया गया। उनकी समझ से शायद मैं नगीना से प्यार करने लगा था।.......और अब वह मुझसे घृणा करने लगी है।
मैं नगीना से पूछता हूँ। लेकिन वह कुछ भी नहीं बताती। उल्टे अपने हाव-भाव से राज को और भी गहरा बना देती है। मैं कहता हूँ कि मैं उनकी हर बात मान लेता। बिना बताये उन्होंने ऐसा क्यों किया? वह कोई जवाब नहीं देती। सिर्फ मुस्कुराती है। मेरे हजार प्रश्नों का उत्तर उसके पास एक ही है—'नहीं' यह बात नहीं है।'
ऐसे राजदार जवाब के बाद वह फ्राक के नीचे अपनी जाँघिया को कमर पर ऊपर की ओर सरकाती हुई, एड़ियाँ उठा कर उचक जाती है और इस कदर चुप हो जाती है जैसे यह आखिरी बात हो।
वह नहीं चाहती कि मैं उससे पूछूं कि—'तब कौन-सी बात है? उन्होंने मेरी आँख क्यों निकाल ली थी?'
पता नहीं, उसे कुछ मालूम है या नहीं, लेकिन वह जताने की कोशिश करती है कि उसे सब कुछ मालूम है और यह एक भेद है, इसलिये नहीं बतायेगी। सही बात जानने की उत्कंठा में मेरे चेहरे पर जो संशय-पूर्ण तनाव आता है, वह उसे अच्छा लगता है। इसीलिये वह बात को यहीं तक रोक देती है। शायद इसमें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं कि सही बात क्या है और किस बात की आशंका से मैं मुर्दा हो जाता हूँ। बस, शायद इतना है कि, मेरे चेहरे पर मुर्दनी देखकर उसे राक्षसी सुख मिलता है। और अपनी दोगली शक भरी बातों से कभी भी किसी के भी सामने मुझे वह इस हालत में ला सकती है।

………उसके इस अन्दाज में थिरकन है। और वह जानबूझ कर ही ऐसा करती है। नहीं तो उसकी जांघिया का कसाव इतना ढीला नहीं हो गया होता कि सरक कर नीचे आ जाय। वह बातों के रुख को मोड़ने के लिये ही ऐसा करती है। जब वह जान लेती है कि मेरा दुविधा-भरा तनाव इस हद तक पहुँच गया है कि मैं उसे थप्पड़ मार दूं तो हालात को खूबसूरत मोड़ देने के लिये ही वह ऐसा करती है। उसका थिरक जाना इससे अधिक कोई अर्थ नहीं रखता।

वह मेरे पुकारने पर भी नहीं रुकती, हिकारत की हँसी हंसती चली जाती है। मैं झुंझलाया-सा खड़ा रह जाता हूं। शायद मैं किसी टूटे धागे को फिर से जोड़ना चाहता हूँ। लेकिन उसने उस धागे के छोर को छोड़ दिया है। इसीलिये मैं उसे रोक नहीं सकता, सिर्फ गाली दे सकता हूँ। और जिस दिन सबसे अधिक नफरत हो जाय उस दिन थूक सकता हूँ। चाहे तो वह भी थूक सकती है। थूक तो हर किसी के गले में है और यह काम आसान है। लेकिन है सबसे आखिरी। इसके बाद कुछ रह नहीं जाता। वैसे यह थूक-थाक की बात भी फालतू है। मैंने ही तो कई बार कितनी बातों को थूक कर चाट लिया है। सिरे से कसमें खाने के बाद भी फिर-फिर वही करता रहा हूँ। मैंने अस्पताल में ही फैसला किया था कि निकलने के बाद उनसे नहीं मिलूंगा। नगीना और उसकी माँ से भी नहीं। दूसरे शहर को चले जाने के बारे में भी सोचूंगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। आज भी मैं वहीं का वहीं हूँ। फर्क इतना आया है कि शहर के लोग मुझे आज भी गुण्डा तो समझते हैं लेकिन मैं जानता हूं,—गुण्डा बने रहने लायक मेरे अन्दर कुछ नहीं बचा है।' वे तीनों और नगीना की माँ भी इस भेद को अच्छी तरह जान गई है।

जब मैं रोता हूं तो आज भी दोनों आँखों से पानी गिरता है, कीचड़ भी दोनों में आता है। चमक तो पत्थर वाली आँख में ही अधिक है। मैंने

एक दिन एक बच्ची को पकड़ कर अपनी आँखों के सामने खड़ा कराया था। उससे पूछा था कि पत्थर में उसकी परछाई है या नहीं। उसने इनकार कर दिया था और उंगली से पत्थर को छुआ था और उसे मुर्दा कहा था। जानता हूं, इस आँख की तैरती मछलियाँ मर चुकी हैं। आकाश है, लेकिन उसका तूफान खो चुका है। बादलों को रंगने वाली शाम की लाली झर गई है। अब चाहे तो वह पत्थर को आग में पका कर लाल कर सकता है।

इतना होने पर भी मेरा कोई विकल्प सामने नहीं है। मैं उन्हीं को ढूंढ़ता हूँ। अस्पताल से निकलने के बाद पहली मुलाकात में ही उन्होंने बता दिया था कि हड़ताल तोड़ने वाला काम अब बेहद खतरे का हो गया है। पुलिस भी डरती है, साथ नहीं देती। सरकार बदल गई है। मजदूरों ने दागदार लोगों के जिस्मों पर दाग लगा लिया है। अब वे जान से भी मारते हैं। इसलिए धंधा मंदा है। हालत को देखते हुए मैंने भी इस बात को स्वीकार लिया था। लेकिन दूसरे धंधे तो ज्यों के त्यों थे। उन्होंने मुझको दावत नहीं दी, फिर भी मैं शामिल होने लगा हूँ।

वे तीनों कल रात से ही मुझे नहीं मिले हैं। पहले मैंने सोचा था कि पुलिस की गोली से उनमें से कोई न कोई जरूर मारा गया होगा। क्योंकि कई राउण्ड गोलियाँ चली थीं। चीखने की आवाज भी आई थी। लेकिन मैं खुद इतनी दूर भाग गया था कि मेरे लिए अन्दाज लगाना मुश्किल था कि सायडिंग पर दरअसल हुआ क्या? सुबह होने पर मुझे मालूम हो गया था कि वे न गिरफ्तार हुए थे, न घायल ही हुए थे। उन्होंने माल भी बेच लिया था और रुपया भी मिल गया था। लेकिन वे कहीं न कहीं छिपे थे। उनके छिपे होने की बात नगीना और उसकी माँ को मालूम होनी चाहिये। लेकिन वे मुझको बताएंगी नहीं।

मैं आज सुबह ही नगीना के घर गया था। उसकी माँ ने मुझको देखा। लेकिन वह बात करने के लिये नहीं आई। आंगन में बैठी जले कोयले

को घोती रही। बुड्ढी साया और पेटीकोट में आधी नंगी-सी थी। उसकी मांस की पोटली जैसी थुलथुल देह पसरी हुई थी। बुड्ढी का यह रूप मैं हमेशा से देखता आ रहा हूँ, लेकिन इसका असर मुझपर नहीं होता। आँगन में हमेशा यह इसी शक्ल में रहती है, किसी के आने-जाने से यह हालत नहीं बदलती। बुड्ढी अगर बिलकुल नंगी होती तो भी मैं बिलाहिचक-आँगन में जा सकता था और यह बिलकुल मामूली-सी बात होती। लेकिन आज सुबह बात बिलकुल दूसरी थी। मेरे जाने पर चूँकि बुड्ढी मेरी ओर मुखातिब नहीं हुई, इसलिए मैं अन्दर नहीं गया। दरवाजे पर ही खड़ा रहा। मुझे लगा कि वे तीनों फिलहाल बुड्ढी के ही घर में छिपे हुए हैं और वह बताना नहीं चाहती। इसलिये मुझे अन्दर नहीं जाना चाहिये। वैसे मुझसे छिपाने का कोई कारण समझ में नहीं आ रहा था। अस्पताल से लौटने के बाद से ही मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि वे मुझको खोटी और मरोसे का तो समझते हैं, लेकिन काम का नहीं। सम्भवतः इसलिये मेरी उपेक्षा करते हैं। या यह भी हो सकता है कि वे सोचते हों कि मैं कभी न कभी उनसे बदला लूँगा। इसलिए डरते हों और हमेशा होशियार रहते हों और यह बुड्ढी इस मामले में उनका भेदिया बन गई हो। जो हो, मैं उन तमाम उलझनों से बचना चाहता हूँ, इसलिये कोई दिलचस्पी न दिखला दरवाजे पर ही खड़ा रह गया था।

थोड़ी देर बाद नगीना फर्श से निकल कर आँगन में बिना रुके ही दरवाजे तक आई। वह इस तरह चलती हुई आई जैसे मेरे आने की खबर उसे पहले से मालूम हो और बातचीत के टुकड़ों को उसने पहले से ही मन में सजाकर रख लिया हो। उसने आते ही निरसंग भाव से पूछा, क्या बात है?

मुझे लगा, जैसे वह दुत्कार रही हो। थोड़ी देर के लिये मैं क्रोध और घृणा से काँप गया। मेरे हलक से आवाज नहीं निकली। मैंने मन ही

मन कल्पना की कि जवाब में मैंने नगीना को एक तेज तमाचा मारा है, उसके होंठ खुल गये हैं, वह नीचे गिर गई है और उसके मुँह से खून आ रहा है। लेकिन मैं थोड़ी देर में ही सम्भल गया। होठों की कँप-कपाहट पर काबू पाते हुये मैंने कहा, 'उन्होंने तुम्हें रुपये दिये हैं ?' बहुत सम्भलने पर भी मेरी आवाज मर्रा-सी गई। आपको अचरज होगा उस मर्राहट में घृणा और क्रोध नहीं रूआंसापन और कातरता थी। नगीना ने बड़ी बेरुखी से जवाब दिया—'नहीं।'

—'और तुम्हारी माँ को ?'

—'पता नहीं।'

'लेकिन उन्होंने मेरा हिस्सा मुझको नहीं दिया, सोचा, तुम्हारे यहाँ जमा रख गये होंगे।'

—'तुम डरपोंक हो।'

मैं थोड़ी देर के लिए असमंजस में पड़ गया। क्या जवाब देता। कुछ सोचने लगा। मेरे डरपोंक होने की बात शायद सच हो। इसका विरोध मैं नहीं कर पाऊँगा। मैंने कहा—मैं उनके साथ गया था। माल भी ढोया। उम्मीद थी वे मेरा हिस्सा देंगे। मैंने सोचा वे तुम्हारे पास या तुम्हारी माँ के पास जमा रख गये होंगे। आज मेरे पास एक भी पैसा नहीं है।'

'तुम दूर-दूर खड़े थे। पुलिस के आने पर वे लड़े थे और तुम भाग गये थे। डरपोंक....।'

इसके बाद मैं राख जैसा ही हो गया था। मेरे पाँव काठ के घोड़े की तरह दरवाजे पर जमे रह गये। हिले-डुले नहीं। कुछ देर तक मुझे अपनी इस स्थिति का ज्ञान तक नहीं रहा। थोड़ी देर बाद पाया कि मैं दरवाजे को थामें खड़ा था और नगीना दरवाजे से हटकर आंगन में अपनी मां के पास चली गयी थी। मैं जानता था, नगीना जो कह रही थी, वह सच था। उन्होंने उसे बता दिया है। बन्दूक की आवाज आते

ही मैं भाग खड़ा हुआ था। मैंने मूर्खता की थी, अचानक गोली चलने से मैं घबड़ा कर भाग खड़ा हुआ था। वैसे, उन्होंने मुझको बताया नहीं था कि पुलिस से बात तय हो गई है और रेलवे सायडिंग में वैगन तोड़ते समय पुलिस अपनी वफ़ादारी के सबूत में गोली चलायेगी और पुलिस से लड़ेंगे भी, मुझे खुद ही सोच लेना चाहिये था कि उन्होंने पुलिस से यह तय कर लिया है। मुझे सबसे अधिक पछतावा रुपये न मिलने का है। मेरे पास पैसा बिल्कुल नहीं है। अब मुझको सोच लेना चाहिये कि वे पैसे नहीं देंगे।

मैं वहाँ से चला आया था। नगीना अब मुझको मुँह नहीं चिढ़ाती और बुड्ढी भी मुझे भंड़ुआ-लुच्चा लफंगा—नहीं कहती। वे सब शब्द टूट गये जो हमारे रिश्ते की कड़ियाँ थे। मेरे मन में कई बार आया कि बुड्ढी के मुँह पर एक लात लगा दूँ और कहूँ कि—मैं काना हो गया और मेरी एक आँख पत्थर की है तो तुम्हारा क्या? मैंने कब कहा कि तुम मुझको अपना दामाद बना लो! तुम दोनों साली रण्डी हो।

अस्पताल से निकलने के साथ ही सबसे पहले मैं बुढ़िया के घर आया था। हालाँकि मुझको मान करना चाहिये था कि जिस औरत को मैं माँ की तरह समझता रहा हूँ, वह एक दिन भी मुझको देखने अस्पताल नहीं आई। मैंने सोचा था, बुड्ढी को अस्पताल न आने का उलाहना दूँगा। लेकिन मुलाकात होने पर बुड्ढी ने पूछा तक नहीं कि तुम कब आये? वह बिलकुल चुपचाप गुमसुम-सी हो गई। शायद मंटू नामक मेरे जैसे काना आदमी की उपस्थिति को नकारने के लिए ही बुढ़िया घर से निकल कर गिरजे में चली गयी थी और वेवक्त की प्रार्थना करने लगी थी। मैंने सोचा था कि मैं बुड्ढी और नगीना की तरह ही क्रिश्चियन हूँ और वे तीनों दूसरे धर्म के हैं। लिहाजा बुड्ढी को चाहिये था कि मुझको अधिक नजदीक महसूस करे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वे तीनों आज उनके लिए अधिक प्यारे थे, अधिक अपने।

बुड्ढी को गिरजे में जाता देख मैं भी गिरजे के दरवाजे तक गया था। मैंने देखा कि बुड्ढी ने छाती पर दो बार क्रास के चिह्न बनाने के बाद फर्श पर माथा टेक दिया था और उसके बाद उकड़ू बैठी दोनों हाथ जोड़े बुदबुदा रही थी। बुढ़िया ने ईसाई होने के बाद भी अपना धर्म नहीं छोड़ा है। क्या सबूत है कि वह शिवजी को नहीं गुहरा रही होगी। वह हिन्दू रीति से प्रार्थना कर रही थी। मैं थोड़ी देर तक गिरजे के दरवाजे पर खड़ा रहा और क्राइस्ट के सामने आने के कारण ही क्रास बनाया।

जब मैं वहां से लौटा तो नफरत से मेरी रगरग फट रही थी। मैंने बुड्ढी को गाली दी कि साली रण्डी है, पाप की कमाई खाती है और मां मरियम के सामने गिड़गिड़ाती है वे उसे माफ कर दें। अपनी बेटी को दिखाकर शहर भर के गुण्डों को फँसाती रही है और उनका पैसा खाती रही है। चोरी की चीजों को गिरजे में छिपा कर रखती है। शहर की हर चोरी की खबर उसे मालूम है। लेकिन पुलिसवाले आज तक उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके। उसने अपनी लड़की को गजब की सीख दी है। वह किसी खास एक पर रहम नहीं करती, सब को एक निगाह से देखती है। और इस लीक से हटकर कभी भी, किसी भी आदमी के साथ जब खास कुछ होता है तो उसे भुगतना पड़ता है। लेकिन यह राज आज तक नहीं खुला कि गिरोह के किसी आदमी के साथ जब कोई दुर्घटना होती है तो उसमें बुढ़िया का कितना हाथ होता है। इस शहर का कौन भला समझेगा कि इतने बड़े गिरोह की डोरी इस बुड्ढी के हाथ में है और शहर की हर दुर्घटना की पाई-रत्ती की खबर इसे रहती है। मैं सोचता हूं, कभी मुखबिर बना तो इस बुड्ढी के गले में फंदा डलवा दूंगा वह मरियम की अवतार नहीं, भुतनी है।

वे मुझे मिले थे। उन्होंने मेरे साथ बैठकर ताश खेला था। मेरा बायां गाल अब तक झनझना रहा है। मैं धीरे से एक थप्पड़ अपने बायें गाल

पर मार कर देखना चाहता हूँ, लेकिन तमाचा नजर नहीं आता। जब मैं ताश खेल रहा था तो उन्होंने कहा था कि तुम बाँयी ओर चिड़िया का इशारा नहीं कर सकते। तुम्हारी पलकें नहीं गिरेंगी और आँख का पत्थर नहीं हिलेगा। मैंने उनकी बात स्वीकार ली थी। फिर भी उनमें एक ने मेरे बायें गाल पर तमाचा मारा था यह बताने के लिए कि मैं सचमुच देख नही सकता। इतने पर भी मैं पत्तियों को लाल करने के लिये ही खेल रहा था और उन्हें लाल-पीले की कोई फिक्र न थी। वे हार कर भी जाँघ के बीच दाब रखे ब्लाडर को शराब पर मुक्का मार रहे थे जो छिटक कर मेरी जाँघ पर भी लग जाते थे। बीच-बीच में जब वे ब्लाडर से शराब निकाल कर पीते तो मैं भी मांगता और वे आत्मीयता से ही दे देते थे। मैंने खेलने से इनकार नही किया था, वे ही उठ गये थे, फिर उन्होंने मुझे एक थप्पड़ मारा था। हँसते-हँसते ही मारा था, ऐसे जैसे मजाक कर रहे हों। लेकिन दुश्मनी में भी इससे अधिक जोर से नहीं मारा जाता। वे कहते हैं, उन्होंने उस दिन भी मजाक ही किया था, यानी मजाक में ही आँख निकाल ली थी।

अब मैं तमशाई होकर इस हालत को झेलता हूँ। वैसे ही, जैसे खंडहरों में रहनेवाला भूत के भय से मुक्त हो जाता है। अब मेरी आदत हो गई है कि कोई भी घटना, दुर्घटना भी, मुझे अचानक नहीं लगती। भले ही मुझे देख कर लोग चौंक जाते हों, लेकिन मैं किसी अनहोनी आप-बीती पर शायद ही चौंकता हूँ। शायद होनी-अनहोनी के बीच विभाजन का मेरा एहसास ही मर गया हो। एक चीज मुझको जरूर सालती है,वह है, जान का भय! लगता, कब, कौन, किधर से आकर मुझे मार दे। कभी-कभी अंधेरे में रात को सोये-सोये मुझे लगता है, किसी ने मेरे सीने में गहराई तक चाकू उतार दिया है। मेरी बहुत ही गिड़गिड़ाहट और कातर प्रार्थना के बाद भी मारने वाले ने हँसते-हँसते मारा है। मैं खून को बहने नहीं देता। जख्म को हथेली से दाब लेता हूँ। लेकिन

दर्द तो दबता नहीं, खून के पनाले के साथ मेरे मुँह से भयानक चीख निकलती है। मैं भयभीत पिल्ले की तरह बिस्तरे पर सिमटता जाता हूँ। मेरी देह के साथ बिस्तरा भी सिकुड़ आता है। रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कलेजा काँपने लगता है। जैसे किसी ने मेरी छाती फाड़ कर बर्फ भर दिया हो। ऐसी हालत में मुझे लगता है, कोई भी एक आदमी, मेरे साथ इस कमरे में होता। मात्र आदमी, चाहे वह कोई भी होता।...मैंने रात में भिखमंगों को फुटपाथ पर आवारा कुत्तों को गोद में लेकर सोते देखा है। लेकिन उस समय मुझे यह बात समझ में नहीं आती थी। लेकिन आज...हालत यही रही तो मुझे भी किसी कुत्ते की तलाश करनी होगी। □□

पेशेवरों की बस्ती

★

वे लोग मुझे घेर कर खड़े हो गये थे। उनकी संख्या पन्द्रह से कम न होगी। वे चिन्तित नजर आते थे, जैसे वे सब किसी बड़ी दुर्घटना के शिकार हो गये हों और उबरने का कोई रास्ता नजर न आता हो। मैं इनमें से सबको पहचानता भी नहीं। लेकिन वे शायद मुझको पहचानते हों। अगर ऐसा न होता तो वे मेरा घेराव न करते। उनके प्रति मेरी कोई उत्सुकता न थी। क्योंकि वे हमेशा ही इसी तरह रोक कर बड़ी निरर्थक बातें पूछा करते हैं। इनके बारे में मेरी राय है कि ये न सिर्फ अफवाहों पर यकीन करते हैं, बल्कि अफवाहों को खुद से गढ़ते भी हैं और बड़ी ही संजीदगी से लोगों में उछालते भी हैं। ये बैठे-ठाले कोई अफवाह गढ़ लेते हैं और कहते चलते हैं। और इतनी बार दुहराते हैं कि खुद उसकी चपेट में आ जाते हैं और खुद से पैदा की गई अफवाहों को सच मान लेते हैं। इनको देख कर कभी-कभी भय होता है कि ये खुद एक अफवाह ही न हों! अगर ऐसा न होता तो अपने अस्तित्व की मौजूदगी के बारे में ये इतने लापरवाह न होते। परले सिरे की उदासीनता, जो मायूसी भी न कहलाये, मगर हर रगो-रेशे पर बिछी रहे।

दिमाग की नसों पर बनावटी, झूठी चोटों की इतनी, इतनी कल्पना कर ली जाय कि, वास्तविक चोट भी झनझनाहट न पैदा कर सके और मातम का इतना अभ्यस्त हो जाय कि, किसी जनाजे में कन्धा लगाते समय भी चेतना की धरातल पर कोई अतिरिक्त चोटी न रेंगने पाये या वह कभी रेंगे भी तो चेतना का धरातल इतना रौंदा जा चुका रहे कि, कुछ महसूस न हो, कोई फर्क न पड़े। इसलिये उनके इस तरह घेर कर खड़े हो जाने के प्रति मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। रात को साढ़े ग्यारह बजा है। मुझे बेहद भूख लगी है। मैं सामने के दो आदमियों को ठेल कर आगे बढ़ जाता हूँ। वे फिर मुझे रोकते नहीं हैं, साथ-साथ चलने लगते हैं। उनमें एक आदमी कईयों को पीछे ठेलकर मेरे पास चला आता है, पूछता है: बताइये हमने आपको वोट दिया था न ?

—मैं तो वोट में खड़ा ही न था!—मुझे हँसी आ जाती है।

वह आदमी सकपका जाता है। हकला कर कहता है, मतलब कि, आपकी पार्टी को, अबुल साहब को!

मैं कहता हूँ—दरअसल बात क्या है,वह तो बताओ। लेकिन उस देहाती सा लगने वाले आदमी को जवाब देने का मौका नहीं मिलता, उसकी बाँह पकड़ कर कोई पीछे खींच लेता है। मैं चलता जाता हूँ। लोग इतने हैं,सबों को कुछ न कुछ बोलते रहना चाहिये था,किन्तु वे चुप थे। उनका कोई चुना हुआ प्रतिनिधि न था,फिर भी वे चाहते थे,कोई एक ही बात करे। उनकी इस स्थिति को महसूस कर मुझे फिर हँसी आ गई। उनकी उलझन से मेरी कोई दिलचस्पी न थी, मेरा विश्वास है, बड़ी बेतुकी-सी कोई उलझन उनके दिमाग में होगी, जिसके प्रति वे खुद भी सीरियस न होंगे। किसी बड़ी समस्या से जूझने और उसके समाधान न होने की दुविधा—अगर मैं गौर से देखता तो शायद यही भाव उनके चेहरे पर था। यह विचित्र बात है कि, ऐसे लोग समस्याओं के सामने जितने असहाय लगते हैं, उसके समाधान के प्रति उतना ही अनासक्त भी नजर आते हैं।

उनमें से एक बुड्ढा एंग्लो इण्डियन उस देहाती जैसे लगनेवाले आदमी को पीछे खींच कर आगे आया। बोलने से पहले वह अपने मुँह में बातों को समेटता-सा लगा। वह बिना बोले अपने पोपटे गालों को इस तरह चला रहा था, जैसे बोलने के पहले वह बातों को तह कर मुह में रख रहा हो। उसके इस तैयारी के क्षणों में मैं प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन चलते रहने से अपने को रोका नहीं। मुझे भूख लगी थी। और वे सब चुप थे। बुड्ढे एंग्लो इण्डियन ने अपने को अच्छी तरह तैयार कर लेने के बाद कहना शुरू किया : हमलोगों ने, आप जानते ही हैं, आप हो लोगों को वोट दिया। जिस दिन कांग्रेस हार गई, तिरंगा भी नही रहा। अब हर मुहल्ला, देखते नही, लाले-लाल है।

—सो-तो है, देखता हूं! लेकिन बात क्या है?

—बात?....क्या यह सच है कि, मद्रास में रेस बन्द हो गया? डी० एम० के०....?

—होगा, सच भी होगा!—टालने के लिये मैंने कहा। लेकिन थोड़ी देर में ही मुझे लगा कि, मैं गलत कर गया हूँ। वे इतने घबराये से मुझ पर ढहे कि मैं गिरने से बचा। उन्होंने मुझको बलपूर्वक नहीं, फिर भी इस तरह रोक लिया कि मेरा आगे बढ़ना कठिन हो गया।

मैंने खुद को सम्भालते हुए कहा—वाकया है कि, डी० एम० के० सरकार का कोई ऐसा आर्डिनेन्स पढ़ने को नहीं मिला। तो फिर कैसे कह दूं?

उनमें-से कई ने एक साथ मिलकर पूछा, क्या आपलोग कलकत्ता रेस भी बन्द कर देंगे?

—क्यों, ऐसी तो कोई खबर नहीं है?

—बहुत से लोग कह रहे हैं। और बहुत से लोग जो कहने लगते हैं, वह सच हो जाता है।

अब मैं उनकी उलझन पूरी तरह समझ चुका था। यह उलझन बेतुकी

सी न थी, उनके जीवन-मरण का प्रश्न था। इसीलिये इतनी रात गये भी ये बेफिक्र लोग, फिक्रमन्द बने घूम रहे थे। उन्होंने उलाहने के स्वर में कहा—देखिये साब, हमलोगों ने आप ही लोगों को वोट दिया है! हमारे बालबच्चों को भूखों न मारियेगा। यह पूरा मुहल्ला पेशेवर है, और उसका एकमात्र पेशा रेस खेलना है। पाँच सौ फेमलियों के पाँच हजार लोग कलकत्ता रैस पर जिन्दा हैं। इनका नसीब घोड़ा है, घोड़ा! सिर्फ घोड़ा! घोड़े मर जाएँ, ये मर जाएँगे। देखिये, हम हमेशा वोट देंगे। चन्दा भी देंगे! सिर्फ घोड़े दौड़ते रहें। चावल मँहगा हो। कोई बात नहीं। लेकिन आप लोग हैं, तो वह भी मंहगा न होगा। सब कुछ बन्द हो जाय, मगर घोड़े दौड़ते रहें।.........

अब तक मैं उनको टाल चुका था। वे बिखरने लगे थे। शायद उन्हें, झूठी ही, मगर तसल्ली चाहिए थी। या उनके दिलों को प्रतिवाद का सन्तोष प्राप्त हो गया हो कि, जिसके कहने पर वोट दिया उस तक अपना विक्षोभ हमने पहुँचा दिया।

मैं उनसे अलग हो, उस केरलियन होटल में पहुँच गया, जिसकी दस टेबुलों में आठ पर एंग्लो इण्डियन औरत-मर्द अब भी जमे हुए थे। ज्यों-ज्यों रात बीतती है, इस होटल की भीड़ बसती जाती है। लेकिन न बार, काफे की गहमा गहमी होती है और उन नितान्त सर्वहारा होटलों की तरह की भीड़ भी नहीं, जिनकी टेबुलों पर लोग एक दूसरे को ठेल कर बैठ जाते हैं और शोर-शराबे या मोलभाव का निहायत कस्साई गुदड़ी बाजारों का दृश्य होता है। ये लोग इतनी भीड़ कर के भी इस कदर चुप रह सकते हैं। इनको देखकर लगता है, जैसे ये रेस के थके हुए घोड़े हों; हारे हों या जीते हों, लेकिन दौड़ने के कारण थक गये हैं। अब अस्तबल में घास खा रहे हैं। ये लोग चाय और कबाब की प्लेटें और कप सामने रख इतनी उदासी से उनकी ओर देखते

हुए सो जाते हैं। मैं जब होटल से निकल कर चलता हूँ तो फिर कुछ आवाजें आती हैं :

हमारे वोटों को भी आप लोग याद रखें, नहीं तो हमें भी जुलूस निकालना आता है।—मैं चलता हूँ ; रात बेहद बीत गई है। मैं उनके विषय में सोचना नहीं चाहता, फिर भी लगता है, इसी रिपन स्ट्रीट से एक बहुत बड़ा जुलूस गुजर रहा है, जिसमें औरत, मर्द, बच्चे सब शामिल हैं, उनके हाथ में कोई झण्डा नहीं है, उनके मुँह में कोई नारा नहीं है। उनके कंधों पर मरे हुए घोड़ों का जनाजा है। अचानक मुझे आज से कई बरस पहले का रंडियों का जुलूस याद आ गया, जिन्होंने कलकत्ता से उखाड़ देने के प्रतिवाद में जुलूस निकाला था। उन्होंने पेशागत जीविका का स्मारक जमकर तैयार कराया था। मुझको लगता है, इस तरह के बहुत सारे जुलूसों का इसी रिपन स्ट्रीट से गुजरना बाकी है। यह पेशेवरों की बस्ती है। □□

हम अभी अभी कान्स्ट्रेंशन कैंप लाये गये थे। उस समय वनमालिनी के गले की आवाज रुँधी हुई थी। वह कुछ भी नहीं बोलती। आंखें बंद किये पड़ी हुई थी। बीच-बीच में आंखें खोलकर अपनी बच्चो की ओर देखती और फिर आंखें बंद कर लेती। मै सोच रहा था—आंदोलन के औचित्य पर बहस करनेवाली इस औरत को आंदोलन पूरी तरह समझ मे आ जायेगा, अगर उसकी बच्ची को सुबह होने के पहले ही कुछ हो गया।

आज से कई सप्ताह पहले वनमालिनी मुझको जेल गेट पर ही मिली थी। मैं अपने चाचा से साप्ताहिक इन्टरव्यू लेने गया था। मेरे चाचा डी॰ आई॰ आर॰ में राजनीतिक विचाराधीन कैदी हैं। तब मुझे नहीं मालूम था कि वनमालिनी का पति किस अपराध में बंद है। उसका इन्टरव्यू क्रिमिनल कैदियों के साथ हुआ था। उसका पति निश्चित रूप से राजनीतिक बंदी नहीं है। मैंने सोचा कि उसका पति कोई साधारण किरानी होगा, जो किसी गबन के केस मे पकड़ लिया गया है। या इसी प्रकार का कोई लगानी केस उस पर लाद दिया गया होगा। ऐसे लोग आम तौर से बेकसूर होते हैं।

उस दिन वह जेल गेट पर देर से पहुँची थी। समय बीत जाने के कारण जेल अधिकारी उसे इन्टरव्यू नहीं दे रहे थे और वह थी कि इन्टरव्यू लेने के लिये लड़ रही थी। यह सब हमारे सामने हो रहा था। यह देखकर हम कई साथियों ने एक साथ मिलकर उसे इन्टरव्यू देने की मांग जेलवालों से की। उसे इन्टरव्यू मिल गया और हम चले आये। दूसरे सप्ताह भी उससे मुलाकात हुई। मुझे देखकर यह कहते हुए मेरे पास चली आई कि पिछले सप्ताह उसने हमें धन्यवाद नहा दिया था। मैंने छूटते ही पूछा—"आप के पति किस अपराध में जेल में हैं?" वह बड़े चाव और उत्सुकता से मुझसे मिलने आई थी। लेकिन मेरे इस सवाल से सकपकाकर जमीन की ओर देखने लगी। उसे घबड़ाया देख

मैंने दुबारा सवाल पर जोर नहीं दिया और बात बदलते हुए कहा—
"आज तो आपको इन्टरव्यू मिल जायेगा, समय से आई हैं।"
वह सिर्फ 'जी' कहकर जेल गेट पर आगे बढ़ गई। उसका इस तरह सकपका जाना बड़ा अजीब लगा। मैं सोचने लगा, ऐसा पूछकर मैंने कोई गलती तो नहीं की ? क्या पता, उसने इस तरह पूछा जाना अपनी अंदरूनी जिंदगी में दखलंदाजी समझा हो।""""

मैं भी उसके पीछे-पीछे जेल गेट के अंदर चला गया और इन्टरव्यूवाले कमरे में जाकर बैठ गया। बड़े से हाल के दूसरे किनारे पर तारों के बाड़े के बीच उसका आम कैदियों के साथ इन्टरव्यू हो रहा था। जब मेरे चाचा उस कमरे में इन्टरव्यू के लिये आये, तब तक मैं उस औरत की उपस्थिति को भूल चुका था। उस कमरे में राजनीतिक कैदियों से मुलाकात करने के लिये आये, अनेक आदमी बैठे हुए थे, वे मेरे परिचित थे, मैं उनसे बातें करने लगा था।

लेकिन जब इन्टरव्यू खत्म कर मैं जेल गेट के बाहर आया तो वह औरत गेट पर ही खड़ी मिल गई। मुझे देखकर मुस्कराई, दो कदम साथ-साथ चली और अपनी बच्ची का नाम बताया। मैं अपनी ओर से कुछ कहूँ, तब-तक एक बूढ़े सिपाही ने उसे पीछे से पुकारा। सिपाही की आवाज पर वह सकपकाकर ठिठक गई, मैं ठिठका नहीं, चलता ही ही रहा। वह—"एक मिनट में आती हूँ," कहकर पीछे की ओर मुड़ी, लेकिन अपनी बच्ची को मेरे पीछे लगा दिया। उसकी बच्ची मेरी ओर देखती हुई आगे बढ़ी और मेरी ओर से शह पाकर मेरी उँगली पकड़ ली। मेरे उस धीरे चलने के क्रम में मेरा एक साथी, जो अपने बाप से इन्टरव्यू के लिये आया था, मिल गया। उसने बच्ची के बारे में पूछा। मेरे सब कुछ बता देने पर उसने बच्ची को चाकलेट दिया। हम धीरे-धीरे चल कर भी दूर जा सकते थे, क्योंकि वह औरत सिपाही से बात करते हुए देर कर रही थी। इसलिये बड़े रास्ते के मुहाने पर ही जाकर रुक गये।

वह सिपाही से बातें करने में मूर्खतापूर्ण देर कर रही थी। पिछले सप्ताह स्थिति इतनी संगीन न थी, फिर भी हमें भरोसा न था। अनाज और राजबंदियों की रिहाई की मांग पर आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था। शहर में अभी कर्फ्यू नहीं लगा था। मगर स्थिति को देखते हुए किसी भी वक्त लग सकता था, सवारियों का चलना बन्द हो सकता था और हम कहीं भी रुक जाने के लिये मजबूर हो सकते थे। पूरा वातावरण अनिश्चय की स्थिति में था। वहां से जल्दी चलने के लिये मुझसे अधिक मेरा साथी उद्विग्न था। लेकिन जब मैंने उस औरत को पुकारना चाहा तो उसने मुझे रोक दिया। उसकी समझ से पुकारने का अर्थ दूसरा होता। वैसे, वह भी इस पक्ष में नहीं था कि उस औरत को अकेली छोड़कर हम आगे बढ़ जायें, वैसी हालत में और भी नहीं जबकि उसकी बच्ची हमारे साथ थी। मैं चुप होकर अपने साथी को हैरत से देखने लगा। मुझे न सिर्फ उस औरत पर कोफ्त हो रहा था कि वह सब कुछ जानते हुए इतनी देर क्यों कर रही है, या यह कि वह अदना सिपाही उसके पति को जेल की कांटेदार ऊंची दीवारों को फन्दा कर रात के अंधेरे में बाहर निकाल देगा, ऐसा क्यों सोच रही है, बल्कि अपने साथी पर भी मैं खीज उठा कि—अर्थ बदल जाने की बात उसके मगज में क्यों आई? और अचानक यह जो अर्थ बदल जायेगा तो किसके लिये? हमारे लिये या वनमालिनी के लिये या आस-पास के उन सुनने वालों के लिये, जो इतनी तेजी से भाग रहे थे कि बदला या स्थायी किसी भी तरह का अर्थ ग्रहण करना उनके वश का नहीं था।

विवश हो, हम दोनों ठहरे हुए थे। मगर हम दोनों के ठहरने में फर्क था। मुझे कोई भी देखकर समझ सकता था कि यह आदमी किसी की प्रतीक्षा में खड़ा है। मगर मेरे साथी पर यह बात लागू नहीं होती थी। हम दोनों के बीच थोड़ी दूरी भी थी। लेकिन इस दूरी को वनमालिनी की बच्ची ने अपने को बीच में लाकर पाट दिया था। वह

बीच में खड़ी होकर हम दोनों की उँगलियां पकड़े हुए थी। बच्ची के इस सेतुबंध को हम महसूस कर रहे थे और रुके रहने को लिये विवश थे। मैंने अपने साथी से कहा—इस औरत ने उस बुड्ढे से जरूर कर्ज लिया है, नहीं तो वह इतनी देर नहीं ठहरा सकता था।
—"हो सकता है, यही सच हो, मगर इतनी देर नहीं करनी चाहिये।" यह कह कर उसने उलाहने की दृष्टि से मेरी ओर देखा—"मैं जानबूझकर यह मुसीबत सर पर क्यों ले रहा हूँ।" उसका यह भाव देख कर बात आगे बढ़ाने के बजाय मैंने चुप हो जाना बेहतर समझा।
शहर की दूकानें बंद होती जा रही थीं। हो सकता है, थोड़ी देर में सवारियां भी बंद हो जायें। कुछ देर पहले हो गोली चल गई थी, शहर से दूर बशीरहाट में, जिसका पता हमें नहीं था, जिसमें ग्यारह वर्ष का एक बच्चा मारा गया था। पुलिस के कथनानुसार वह टेलीफोन का तार काटने के लिये खाभे पर चढ़ा हुआ था। पुलिस वालों ने उसके प्राण पखेरू को ऊपर ही तार पर अटका दिया और उसका पार्थिव शरीर लुंजपुंज होकर जमीन पर आ गिरा। किसी ने बताया कि आर० जी० कर अस्पताल में बहुत से घायल लाये गये हैं—सो अस्पताल से होकर जाने वाला रास्ता आम लोगों के लिये बंद कर दिया गया है। अस्पताल के सामने उत्तेजित भीड़ खड़ी है और लाशें मांग रही है। यह खबर बिजली की तरह पूरे शहर में फैल गई और देखते ही देखते वातावरण गंभीर और आतंक से बोझिल हो गया। हमारे पास वाली सड़क पर लोग आ जा रहे थे, लेकिन एक भयावह चुप्पी थी। बीच-बीच में पुलिस और मलेटरी की बख्तरबंद गाड़ियां सन्नाटे को चीरती हुई तेजी से निकल जा रही थीं।
हालात को संगीन होते देखकर मेरे साथी ने झुंझलाहट के स्वर में कहा—आखिर इस औरत में तुम्हारी इतनी दिलचस्पी क्यों है? मैं कोई भी कारण नहीं देखता। वह हजारों आम औरतों जैसी ही एक

है। विशेष इतना है कि उसका पति जेल में है। यह भी पता नहीं कि किन कारणों से जेल में है। वह निश्चित रूप से क्रिमनल कैदी है, यह तो इन्टरव्यू की व्यवस्था से ही मालूम हो गया था।'

मैं ने कहा—"हो सकता है, उसके पति को गबन वगैरह के झूठे मुकदमे में फँसा दिया गया हो।"

—"और यह क्यों नहीं हो सकता कि उसने सचमुच अपराध किये हों।"—मेरे साथी ने अन्तिम बात बेहद लापरवाही से कही। मैं चुप हो गया। जानता था, इस तरह की बहस का कोई जवाब नहीं हो सकता। दरअसल उस औरत में मेरी दिलचस्पी थी भी क्या! दो बार की इन मुलाकातों में ऐसा कुछ नहीं था, जिसे विशेष कहा जाय। लेकिन उस औरत का व्यवहार इतना बेलाग और साधिकार था कि इनकारते न बने। उसी व्यवहार का एक पहलू वह बच्ची थी, जिसे वह हमारे पास छोड़ गई थी। हो सकता है, हमें रोक रखने के लिये ही बच्चो को हमारे पास छोड़ गई हो।

थोड़ी देर बाद वनमालिनी सिपाही से बात खत्म कर हमारे पास आई। हमने उसे कुछ न कहा। चुपचाप चलने लगे। हमें चुप देखकर उसने ही कहा—"मुझे उम्मीद थी कि आपलोग ऐसी हालत में मुझे अकेली छोड़ कर नहीं जायेंगे।" हमने उसकी ओर सिर्फ विवश नजरों से देखा और चलते रहे। थोड़ा रुककर उसने अभी की स्थिति पर बातें शुरू की और उसी सिलसिले में उसने आंदोलन के खिलाफ भी कुछ बातें कहीं जो हमें बेहद बुरा लगा। तब तक हमें बस मिल गई थी और हम बस पर सवार हो गये थे। चलती बस में मेरे साथी ने झुक कर मेरे कान में कटाक्ष के स्वर में कहा—"लो, यह तुम्हारी उपलब्धि है।"

बस के अंदर पुलिस जुल्म और आंदोलन पर तेज बहस छिड़ी हुई थी। हम में से किसी को भी बैठने की जगह नहीं मिली। बस भीड़ से बिलकुल ठस थी। वह औरत बिलकुल मेरे सामने खड़ी थी। लेकिन

मैं उसकी ओर देख नहीं रहा था। उसकी आंदोलन विरोधी बातों से उसके प्रति मेरी विरक्ति हो गई थी।
श्याम बाजार मोड़ पर उतरते ही उसने मेरा हैंड बैग पकड़ लिया और आग्रह किया कि बिलकुल दस कदम पर उसका घर है, मैं उसे देख लूं। उसके इस अप्रत्याशित आग्रह को मैं कई क्षणों तक समझ नहीं पाया और बिना कोई जवाब दिये विमूढ़ सा खड़ा रहा। उसने फिर कहा—"मैं अकेली नहीं हूं, मेरी मां और छोटा भाई भी है। वे सब आप से मिल कर खुश होंगे।"
उसके इतने आग्रह के बावजूद मैं जाने की स्थिति में नहीं था। मैं नहीं गया। लेकिन उसने बीच हफ्ते में किसी दिन अपने घर आने का वादा कराने के बाद ही मुझको छोड़ा और अपना पता दिया।
बीच हफ्ते में ही एक दिन दोपहर में मैं उसके घर गया। जानता था, हफ्ते भर बाद जेल गेट पर उससे मुलाकात होगी। तब कोई भी जवाब देते नहीं बनेगा। वह उलाहना देगी, झूठा साबित होना पड़ेगा और शर्मिंदा होना पड़ेगा।
उसका घर एक पंचमंजिला इमारत की छत पर था। सामने बेहद खुली जगह थी और खुला आसमान। उसके पास दो कमरे थे। वह संयोग से मिल गई, कहीं गई नहीं थी। वह मास्टरनी थी। सरकार ने स्कूल-कालेजों को बन्द कर दिया था। मेरे छत पर पहुँचने पर सबसे पहले उसकी बच्ची ने मुझको देखा और मुझसे लिपट गई। वनमालिनी ने कमरे से निकल कर मुझको नमस्ते किया। यद्यपि वह उम्र में मुझसे बड़ी ही लगती थी, फिर भी उसने ऐसा किया। उसने मुझे बैठाया और अपना मां और भाई से परिचय कराया। वह मेरा नाम नहीं जानती थी और यह भी नहीं कि मैं कहां रहता हूं। उसने बड़ा अजीब-सा परिचय दिया—मैं इनको नहीं जानती, इनका नाम भी नहीं। सिर्फ इतना जानती हूं कि इन्होंने जेल गेट पर इन्टरव्यू कराने में मेरी मदद की थी। इनके

चचा जेल में है, राजबन्दी है और ये खुद आंदोलनकारियों के गिरोह के हैं, जो शहर में उत्पात मचाये हुए हैं।

उसकी माँ ने मुझको बेटा कह कर सम्बोधित किया और मेरा नाम पूछा। मैंने जवाब दिया—इतने खतरनाक परिचय के बाद आज की हालत में कोई भी भला आदमी अपना नाम बतायेगा क्या ?

उसकी माँ ने जैसे मेरी शंकाओं को दूर करते हुए कहा—बेटा, इसे अपना ही घर समझो, वनमालिनी दो दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी, हमेशा तुम्हारी चर्चा करती रहती है।

मैं उनके घर में एक टीन की कुर्सी पर बैठ गया। वे सब फर्श पर ही बैठे। उसकी बच्ची मेरे पास खड़ी थी और रह-रह कर मेरी देह पर लोट रही थी। उन्होंने मुझको चाय और बिस्कुट दिया। बहुत देर तक हमारे बीच शहर की हालत पर ही बात होती रही। उसकी मा ने बताया कि वनमालिनी आप लोगों से मिलने से पहले तक आदोलन विरोधी थी, अब अतार्किक ढंग से आंदोलन के पक्ष में बातें करती है। पता नहीं, इसमें यह परिवर्तन कैसे आया।

मैंने कहा—ऐसी बात क्या है, हमने तो इन्हें अपना हमदर्द बनने के लिये नहीं कहा,वैसे ये स्वयं शिक्षिका है,आंदोलन के महत्व को जानती होंगी।

"लेकिन वनमालिनी ने सर हिलाकर बताया कि वह इन तमाम चीजों से अलग रही है। उसका पति स्वयं इन सब चीजों में दिलचस्पी नही लेता था और न लेने देता था।" अपनी मां के दूसरे कमरे में चली जाने पर वनमालिनी ने गहरी साँस खीचकर कहा—"एक बात बताऊँ ?"

"—बोलिये !"—मैंने उत्सुकता दिखाई।

"—आप उस दिन उसके बारे में पूछ रहे थे न, क्यों जेल गया है ? बाद में मैंने बहुत सोच कर फैसला किया कि आपको बता दूँगी। वैसे, यह बात बिलकुल बताने लायक नही है। जानने को तो पूरा मुहल्ला जानता है।

इतना कहकर वह चुप हो गई। कुछ सोचने लगी। उस कमरे की ओर देखा। शायद वह अपनी मां के सामने नहीं कहना चाहती थी। मैं चुप था। उसने फिर कुछ सोचते हुए उसी स्वर में कहा—"काश वह आप के चचा की तरह ही जेल गया होता। आपसे मुलाकात होने और जेल में राजबन्दियों को देखने के बाद से मैं यह सोच रही हूँ। लेकिन यह नही होना था। अगर ऐसा हुआ होता तो आज मैं भी आप ही की तरह कुठां रहित होती। जेल गेट पर सर उठाकर आती जाती, तब मुझे इतना भय भी न होता, तब मैं पुलिस की गोलियों के बीच से गुजर जाती, शायद मर भी जाती। लेकिन जेल गेट से घर तक पहुँचने के लिये किसी पौरुष के सम्बल को तलाश न करती, जैसा कि आप पर पूरी तरह यकीन न करते हुए भी आप को रोक लिया था।"

मैं उससे इस तरह की बातें सुनकर अवाक् था। समझ नहीं पाता कि क्या बोलूं। मैंने कहा—"उस दिन आप आंदोलन विरोधी बातें कर रही थी, आज यह क्या कह रही हैं।"

उसने कहा—यह मेरी आदत है, आपलोगों को देखकर ही मैंने कहा था—दरअसल लोगों से किसी बात पर मतभेद पैदा करने या सीधे कहिये तो चिढ़ाने में मुझे मजा आता है। बस, वैसे ही समझिये, मैंने कहा था। दिल से आंदोलन विरोधी मैं तब भी नही थी। लेकिन मैं अपने को सम्बन्धित नहीं पाती थी, इन सबसे अपने को अलग थलग महसूस करती थी। सोचिये, वैसी हालत में उपद्रव से, माफ कीजियेगा, आंदोलन से, बेगानगी पैदा होगी या नहीं। और तो और, जब कि दूसीके चलते जान जोखिम में पड़ जाय। उनकी बात और है, जो खतरों से खेलते होंगे। मुख्य बात समझिये कि इस मामले में मैं बिलकुल कोरी हूँ। मेरा कोई दूर-दराज का रिश्तेदार भी राजनीति में नहीं है। इस विषय का पूरा अपरिचय हमारे इस परिवार में आप पायेंगे। वह जो था, उसे डिक्टी के बाद ताश खेलने से ही फुरसत नहीं थी।

उसका उठना-बैठना—दूकानदारों के ही बीच था। और दूकानदार.... इतना कह कर उसने बात को बीच ही में रोक दिया।

उसे चुप देखकर बड़ा ही साहस बटोर कर मैंने कहा—"आप बताना चाहती थी कि आपके पति....."न"—"हां", उसने बीच में ही मेरी बात को काट दिया। —क्या कहूँ, आपको अचरज होगी, शायद आप विश्वास भी न करना चाहें। वह रेप केस में गया है—तीन वर्ष के लिये। एक लड़की को ट्यूशन पढ़ाता था, उसी के साथ।"

सचमुच थोड़ी देर के लिये मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। मुझे इस पर आश्चर्य नहीं हुआ कि इतनी अच्छी और जवान बीबी के रहते कोई आदमी रेप कैसे कर सकता है, बल्कि इस पर हुआ कि यह बीबी कैसी है कि जो ऐसे पति के लिये आज भी बैठी है, या उससे मुलाकात करने हर सप्ताह जेल जाती है।

फिर तो वनमालिनी ने एक स्वर में सब बताना शुरु किया—"उसके कई दोस्त हैं, जो मुझको कन्विंस करना चाहते हैं कि वह वैसा नहीं था, जो कुछ हुआ है, वह एक चारित्रिक दुर्घटना है, जो दुर्भाग्यवश उसके साथ हो गई है। उसके मित्र सबूत में पिछले दिनों का हवाला देते हैं कि वह मुझको कितना प्यार करता था। लेकिन मेरा दिल नहीं मानता। आज मैं सोचती हूँ कि वह तब भी एक अर्ध पशु था। मेरे प्रति उसका प्यार भी जानवरों जैसा ही था। उसके किसी भी व्यवहार में विवेक नहीं था। हो सकता है, उसने मुझे प्यार किया हो, लेकिन वह प्यार विवेकहीन और संवेदनाहीन था। आज मैं उसके राजनीति विरोधी होने, सिर्फ ताश खेलने और सिर्फ दूकानदारों से ही दोस्ती करने के चरित्र को महसूस कर सकती हूँ और समझ सकती हूँ। मैं तो अब सोचती हूं, न सिर्फ वह रेप ही बल्कि उसका सम्पूर्ण जीवन ही चारित्रिक दुर्घटना है।

—"लेकिन इतना होने पर भी, और इतना समझते हुए भी आप उससे जेल में मिलने क्यों जाती हैं ? क्या अब भी आप उससे कोई उम्मीद रखती हैं ?"—मैंने महसूस किया, बहुत सम्भालने पर भी उस आदमी के प्रति मेरे स्वर में घृणा भर आई।

वनमालिनी बोली—"यह भी एक दुखान्त ही है। ब्याह के बाद घर जमाई की तरह ही वह मेरे घर रहा था। जहाँ तक पता है, उसका अपना कोई नहीं है। वह नितान्त अकेला है। यह शादी उसकी नौकरी की बुनियाद पर हुई थी। वह एक सौदागरी आफिस में किरानी था। आपने देखा नहीं है, वह उम्र में मुझसे बहुत बड़ा है। पाकिस्तान में उसके खानदान वाले मार डाले गये हैं। उसने बताया भी यही था। आज मैं उससे न मिलूँ तो उससे मिलने वाला कोई भी नहीं है। उससे भी बड़ी बात यह है कि हर बार की मुलाकात में वह अधिक से अधिक गिड़गिड़ाता है, हजारों बार क्षमा माँगता है और हाथ पकड़ कर रोनी-सी आवाज में अनुनय-विनय करते हुए आगामी सप्ताह आने का वादा माँगता है। उसके व्यवहार से एक पति का आभास नहीं मिलता, बल्कि एक निहायत डरपोक लिजलिजे कुत्ते का आभास मिलता है, जो मेरे अगले सप्ताह आने के वादे पर जी रहा हो। दर असल उसकी अपराधी भावनाओं ने इतना सोचने पर उसे मजबूर कर दिया है कि उसने मेरा पति बने रहने का नैतिक अधिकार खो दिया है। मैं तो ऐसा महसूस कर रही हूँ।"

—क्या आपने उसके बारे में फैसला कर लिया ?"

वनमालिनी ने जैसे कुछ सोचते हुए से कहा—'हां, इतना जरूर है कि अब मैं उसके साथ नही रह पाऊँगी। अगर भावनाओं के आधार पर उसका कहीं कोई सम्बन्ध हुआ होता तो वह मुझे उलझन में डाल देता और हो सकता था, मैं हां और ना के बीच झूलती, क्योंकि वैसी हालत में सच क्या है, खोज निकालना कठिन होता। लेकिन यहाँ तो सब कुछ

साफ है। फिर भी समझ नहीं पाती कि जब तक वह जेल में है, तब तक मैं क्या करूँ। उससे मिलना कैसे छोड़ दूँ। या अपने लिये अब कौन-सा रास्ता चुन लूं। कोई रास्ता भी तो नजर नहीं आता?" —अन्तिम वाक्य उसने बड़े ही सम्वेदित स्वर में कहा।

इन बातों के खत्म होने के बाद भी मैं बहुत देर तक उसके यहां बैठा रहा। उसकी मां और उसके छोटे भाई से इधर-उधर की बातें करता रहा।

उसके घर से लौटते समय मैं उसी के बारे में सोच रहा था। मुझे लगा इतनी बड़ी दुर्घटना के बावजूद इस औरत का स्वभाव और चरित्र चट्टान जैसा ही है। मुझे कहीं कोई कटुता या तिक्तता नहीं दिखाई पडी। इतना भर लगा कि कहीं उसके अन्दर खालीपन है, जिसे वह भरना चाहती है और न भर पाने की छटपटाहट से जूझ रही है।....

आज शाम को भी जेल गेट से लौटते समय वह रुक कर उस बूढ़े सिपाही से बातें करने लगी, हम, यानी मैं और उसकी बच्ची दूसरों के साथ आगे बढ़ आये, उसकी बच्ची मेरा साथ नहीं छोड़ रही थी। उसे लगता था, जैसे उसने मेरा साथ छोड़ दिया तो मैं भाग जाऊँगा और वे दोनों अकेली रह जायेंगी। शायद उसे इसका भी एहसास था कि मैं उनके प्रति जिम्मेदार नहीं हूँ और भागूं तो मुझे रोकने के लिये उसके पास ऐसा कुछ नहीं है, जिसका प्रयोग कर वह मुझे रोक सके, सिवाय इसके कि वह मेरी कमीज का छोर पकड़े रहे।

यह मैं सोच रहा हूँ, पता नहीं इस पांच वर्षीय बच्ची के लिये यही सच है या नहीं।

हमारे आस-पास के लोग भाग रहे थे और लोगों के भागने का असर बच्ची पर था। लेकिन वह पूछ नहीं रही थी कि लोग क्यों भाग रहे हैं। वह भागते हुए लोगों को बेचैनी से देखती थी। बच्ची का चेहरा देखकर आसानी से समझा जा सकता था कि वह मेरी तरह इस

बात से सहमत है कि जो भाग रहे हैं, वे अच्छा कर रहे हैं और उसकी माँ बूढ़े सिपाही के पास खड़ी रहकर बुरा कर रही है।

कलकत्ते में आम हड़ताल का यह तीसरा दिन था। तीन दिनों से लगातार गोलियां चल रही थी। मेरी लिये जेल गेट का इन्टरव्यू एक अनिवार्य कर्तव्य था। मगर इन्हें नहीं आना चाहिये था। फिर भी आई थीं। शहर में अबतक गोलियों से अनगिनत लोग मारे गये थे। बेशुमार लोग रास्तों से पकड़ कर जेलों में ठूंस दिये गये थे। आग की लपटों, जहरीले धुंओं और गोलियों की सनसनाहट के बीच पूरा शहर रुक-रुक कर सांस ले रहा था। शाम होते ही कर्फ्यू लग जाता था। यह एक ऐसी शाम थी, जबकि वक्त पर भरोसा कम था। एक बार घर से निकल जाने पर सही सलामत लौटना अनिश्चित था।

हम वहीं खड़े थे कि एक खलवाट सर अधेड़ उम्र आदमी हमारे पास से भुनभुनाता हुआ निकल गया, जैसे किसी को गाली दे रहा हो। उसका नौकर भी जेल में था, वह उससे मिलने आया था। नौकर से अधिक वह अपनी चाबी से मिलने आया था। उसका नौकर दुकान बन्द करने के बाद चाबी लेकर जा रहा था कि कर्फ्यू में पकड़ लिया गया। जेल गेट पर अपनी चाबी के लिये वह जेल अधिकारियों से लड़ रहा था। उसके पास इन्टरव्यू के लिये लिखित अनुमति नहीं थी। जेल अधिकारियों ने उसे उसके नौकर से मिलने नहीं दिया था। बातों ही बातों में यह खलवाट सर आदमी जेल गेट. पर मुझसे इस कदर झगड़ा था, जैसे उसकी चाबी न मिलने की जिम्मेदारी मुझ पर हो।

वह खलवाट सर आदमी हमारे पास से हमें न देखने का बहाना बनाते हुए निकल गया। दौड़ने से उसकी तोंद हिल रही थी। उसका चेहरा पसीने से लथपथ था। दर-असल वह इतना मोटा था कि उसे नहीं दौड़ना चाहिये था। लड़की ने उसकी ओर उंगली से इशारा किया। वह उस खलवाट सर के अस्वाभाविक रूप से दौड़ने के उस दृश्य को देखकर खुश

हो रही थी, जिसमें वह उस गदहे की तरह लग रहा था, जिसके तीन पाव बांधकर दौड़ाया जाता है। कुछ देर के लिए लड़की भूल गई कि उसकी माँ सिपाही से क्यों बात कर रही है।

मैंने बच्ची से कहा—भाग तो रहा है, लेकिन कहीं पहुँच नहीं पायेगा। शायद हो जशोर रोड के उस पार जा सके। वह रास्ते में ही रोक लिया जायेगा। या यह भी हो सकता है कि उसे उसके नौकर के पास भेज दिया जाय। हम दोनों, वहीं सड़क से हटकर किनारे खड़े हो गये। हमने दूर से आती हुई पुलिस की गाड़ियों को देख लिया था। आगे-आगे पुलिस की गाड़ी थी और पीछे दो ट्रक थे, जिनमें बहुत सारे लोग भरकर जेल लाये जा रहे थे। सबसे पीछे गाड़ी में गोरखा सिपाही थे, जो बन्दूकों की नली हवा में ताने हुए थे। बच्ची इन गाड़ियों को देखने में खो गई थी। उसका इस तरह देखना मुझे अच्छा लगा। जाती हुई गाड़ियों में बच्चे भी थे, मगर उसकी उम्र के बच्चे नहीं।

ऐसी हालत में उसका इस तरह जानबूझ कर देर करना अचरज की बात थी। मैं यह भी नहीं समझ पा रहा था कि उस बूढ़े सिपाही से उसका कौन-सा सिलसिला जुड़ा है। हालत बदतर होती जा रही थी। आसपास की दूकानें बन्द हो रही थीं। सड़क के किनारे के कंगाली भी सड़क से हटने लगे थे। अगर उसकी बच्ची मेरे साथ न होती तो शायद मैं आगे निकल जाता और मेरे इस व्यवहार पर कहने के लिए उसके पास कुछ न होता। आम राय में बिना किसी सम्बन्ध के कोई किसी के प्रति जिम्मेदार नहीं होता। अगर ऐसी बात न होती तो मैं उसे पुकार लेने में हिचकिचा नहीं जाता, बल्कि उसकी बांह पकड़ कर खींच लाता या वहीं मेरे होने को इस कदर नकारती नहीं। सम्भव है पिछले परिचय से हमारे बीच एक अण्डरस्टैंडिंग बनी हो, मगर वह सीमाओं के दायरे में ही है।

आशंकाओं से भरे वातावरण में मैं उसकी प्रतीक्षा करता रहा। न जाने कितनी देर तक कि शाम की काली छाया रास्ते पर उतर आई, रास्ते

की बत्तियाँ जली नहीं। अन्त में उकता कर मैंने उसे पुकार लिया। वह व्यस्तता का भाव बनाते हुए जल्दी-जल्दी आ गई।
मैंने उसके आने पर कहा—आपने तो मेरा भी रास्ता रोक दिया। अब मैं जहाँ जाना चाहता था, वहाँ शायद न पहुँच पाऊँ। ...आपने उस बूढ़े सिपाही से कर्ज लिया है क्या? कोई आदमी कर्ज देकर ही किसी को इतनी देर तक उसकी मर्जी के खिलाफ रोक सकता है। जब मैंने बात शुरू की थी मेरे स्वर में झुझलाहट थी। लेकिन कर्ज की बात तक आते-आते मेरा स्वर स्वाभाविक हो गया। —लेकिन, यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि उसने आपको आपकी मर्जी के खिलाफ रोका था—मेरे स्वर में समय की अनिश्चितता के प्रति भय, एक त्रास था।
वह बोली—नहीं, नही ऐसी बात नही, कर्ज-वर्ज की भी बात नहीं है। बात उसी के विषय की है। सिपाही ने उसे वचन दिया है कि वह मुझे बेटी-बेटी कह-कह कर मना लेगा। वह हर बार इसी तरह तंग करता है। मुझसे वचन मांगता है कि मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगी। मैं "हाँ"तो कर नही सकती, फिर भी इस बूढ़े की आजिजी पांव पकड़ने जैसी है। बस, समझ लिजिये, मैं झगड़ नही सकती, शालीनता में देर होती है। "—तब हो सकता है, उसने बूढ़े से किसी बड़ी रकम का वादा किया हो कि तुम मना लो तो मैं तुम्हें यह रकम दूँगा।"
वनमालिनी मुस्कराई—आप लोग चीजों को यहाँ तक सोच लेते हैं, मैं तो सोच नहीं पाती।"
इस चर्चा ने क्षण भर के लिये हमारे दिमाग से वर्तमान स्थिति को निकाल दिया। हम चल रहे थे कि हठात् किसी ने हमें रोका और कहा—आगे मत जाओ, सड़क बेरिकेट थे, पुलिस और प्रदर्शनकारी आमने सामने खड़े हैं। कभी भी या अभी ही गोली चल सकती है। वह आदमी सड़क पर और लोगों को मना करता हुआ, तेजी से विपरीत दिशा की ओर चला गया।

हम थोड़ी दूर आगे बढकर एक गली में मुड़ गये। गली में घरों के दरवाजे और खिड़कियां बन्द थी। लगता था,इस मुहल्ले के लोग परदेश चले गये हैं। बहुत ही कम खिड़कियां खुली मिली, जिससे कोई बूढा आदमी या औरत सारस की तरह गर्दन निकाल बाहर झांकती हुई दिखाई पड़ी। गली में चलते हुए हमने कई बार मुख्य सड़क पर निकल जाने की कोशिश की। मगर हमें सफलता नहीं मिली। हर नुक्कड़ पर फौज के जवान तैनात थे और वे आदमी मात्र को देखते ही दौड़ाते थे। हमें पता नहीं था कि हम कहां तक पहुँच चुके हैं। हमने दो जगह दो दरवाजों को खटखटाया भी, मगर किसी ने खोला नही। उसकी बच्ची को मैंने गोद में उठा लिया था। हमारे बीच रह रहकर आंदोलन पर ही बातें हो रही थीं। वनमालिनी शायद जिन्दगी में पहली बार पूरा अखबार पढ कर आई थी। वह दावे के साथ कह रही थी कि आंदोलन रुक नही पायेगा। लेकिन अपने स्वभाव के अनुसार वह उसके औचित्य पर बहस भी करती जा रही थी। जैसे असहमत होते रहने का कीड़ा उसके अन्दर रह रहकर सर उठा रहा हो।

चलते-चलते ही हम एक भीड़ से जा मिले थे। थोड़ी देर बाद हमें मालूम हुआ कि हम गिरफ्तार कर लिये गये हैं। फौज के सिपाही बन्दूकों की नली हवा में ताने तीन ओर से घेरे हमें लिये जा रहे थे। अचानक ही हथगोलों का धमाका हुआ था। यह हमला किनारे से हुआ था। फौज की घेराबन्दी टूटी थी और कुछ लोग भीड़ से निकल कर भाग गये थे। भागती भीड़ के धक्के से वनमालिनी न जाने कहाँ छिटक गई। लेकिन मैं जहाँ गिरा था, वहाँ वह नही थी। मैं एक दीवार से टकरा गया था। मैं सम्भल जाता, मगर उसी वक्त मेरे चेहरे पर टार्च की तेज रोशनी पड़ी थी और माथे पर डंडा पड़ा था। वनमालिनी की बच्ची मेरी गोद से छिटक कर गिर गई थी और जोर-जोर से चीख रही थी।

मैंने बच्ची को गोद में उठाया था और अंधेरे में चीख कर वनमालिनी को पुकारा था। फौज के लोग भीड़ को जानवरों की तरह हांक कर आगे लिये जा रहे थे। उसी भीड़ में टकराते-टकराते वनमालिनी मुझसे फिर मिल गई थी। वह बेहाल थी। बुरी तरह हांफ रही थी। उसके मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। उसने बच्ची को मेरी गोद से लेना चाहा, मगर मैंने नहीं दिया। बच्ची मेरे कंधे पर बेहोश पड़ी थी। हर तरफ अंधेरा था। हमारे दाहिने के मुहल्ले में आग लगी हुई थी, गोली चलने की आवाज आ रही थी। वह एक मजदूर बस्ती थी। पुलिस ने बलपूर्वक बेरिकेट तोड़ दिया था और गोली चला रही थी। रह रहकर दहाड़ और हँगामाई शोर सुनाई पड़ रहा था। हमारे साथ चलने वाली भीड़, जो संगीनों के पहरे में चल रही थी, लगता था, तीसरे व्यक्तियों की भीड़ है, जिन्हें प्रदर्शनकारियों और पुलिस, किसी से भी वास्ता न था। भीड़ मनहूस की तरह चुपचाप चल रही थी।
लेकिन यह अनुमान थोड़ी देर के बाद ही गलत साबित हुआ। भीड़ में चलने वाले कुछ लोग इकट्ठा हो गये और खड़े होकर जोर-जोर से नारे लगाने लगे। अंधेरे में ही पुलिस और नारे लगाने वालों के बीच जमकर लड़ाई शुरू हो गई। अंदाज लगाना कठिन था कि इस लड़ाई में कितने लोग घायल हुए। कुछ लोगों को रास्ते में ही रोककर पुलिस ने ट्रक में उठा लिया। हमने अन्दाज लगाया कि ये घायल लोग हैं, इन्हें अस्पताल भेजा जा रहा है।
हमें रात के अन्धेरे में जहां लाकर रखा गया वह खण्डहरनुमा एक पुराना मकान था। वह कान्स्ट्रेशन कैंप न था, लेकिन उसे उसी रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था। वह एक राजप्रासाद था। जेलों में जगह नहीं रह गई थी, इसलिये कर्फ्यू में पकड़े गये अधिकांश लोगों को ऐसे ही परित्यक्त स्थानों पर संगीनों के पहरे में इकट्ठा किया गया था। पता नहीं, अन्य स्थानों की क्या हालत थी, लेकिन इस राजबाड़ी में जरूरत

से ज्यादा लोगों को मर दिया गया था। हम रात भर बैठकर ही गुजारा कर सकते थे। सो नहीं सकते थे, सिर्फ सुबह होने की प्रतीक्षा कर सकते थे। सुबह होने पर पुलिस के सार्जेन्टों की एक अदालत बैठेगी, हम से पूछताछ की जायेगी, हमारे चेहरों को पढ़ा जायेगा, फिर हमारे बारे में कुछ सामयिक फैसला होगा,पता नही क्या,क्योंकि हमारे अपराधी होने का पता न हमें है और न पुलिस वालों को। प्रदर्शनकारियों ने बिजली की लाइन काट कर पूरे इलाके को अंधेरा कर दिया था।पुलिसवालों ने राजबाड़ी में मोमबत्ती की कुछ कंदीलों को जलाया तो जरूर था लेकिन उस दागदार रोशनी में अन्धेरा और भी भयानक हो उठा था। हमें न सिर्फ पुलिसवालों के चेहरों से बल्कि अगल-बगल के लोगों के चेहरों से भी भय लग रहा था। कंदीलों की आड़ी तिरछी लाल रोशनी की रेखाएँ हालनुमा उस बड़े कमरे के अन्धेरे को कई टुकड़ों में बांट रही थीं। कमरे में ठूँस दिये गये लोगों के चेहरे भी उस रोशनी से कई टूकड़ों में बँट गये थे और एवं सम्पूर्ण मानव मुखाकृति न उभर पाने के कारण तमाम चेहरे भयावह से लग रहे थे और अपने आस-पास के लोगों में दहशत पैदा कर रहे थे।

वह बूढ़ा खलवाट सर आदमी भी इस भीड़ में पकड़ कर लाया गया था। वह बहुत देर तक पुलिस सार्जेंट के सामने हाथ जोड़े खड़ा रहा और गिड़गिड़ाता रहा कि उसे छोड़ दिया जाय। उसने बड़ी-बड़ी कसमें खाईं कि वह सरकार विरोधी नही है और वह इस आंदोलन के सख्त खिलाफ है! पुलिस वालों ने उसकी नहीं सुनी और उसे धकेल कर कमरे के अन्दर कर दिया। वह खलवाट सर कमरे में आकर भी कमरे के लोगों से मुँह फेरे हुए था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह चेहरे-मोहरे, देह दशा से किसी से भी सरकार विरोधी नहीं लगता। फिर भी उसे क्यों नही छोड़ा जा रहा है। उसकी तोंद इतनी बड़ी थी कि वह उँकड़ नही बैठ सकता था, फिर भी वह घबड़ाहट और अनिर्णय की

स्थिति में दीवार के सहारे अपनी तोंद को दोनों जांघों के बीच दाबकर उकड़ूं ही बैठ गया। और बैठते ही उंघने लगा।

वनमालिनी थोड़ी देर के लिये अपनी स्थिति को भूलकर उस बूढ़े की हरकतों को देखने लगी। उसने मुझसे कहा—"बूढ़ा घूस देकर रिहा होना चाहता है। लेकिन किसी एक को जेल होनी चाहिये तो इसी को। महंगाई तो इसने भी बढ़ाई है। इसका कपड़ा देखकर लगता है, तेल बेंचता होगा और दांत देखकर लगता है, तम्बाकू बेंचता होगा।"

बूढ़ा हमारे करीब ही बैठा था। उसने वनमालिनी की यह बातें सुनी और आंख खोलकर गुर्राया! वनमालिनी ने भी कड़ी नजरों से उसकी ओर देखा। बूढ़े की कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं हुई। वह फिर आंख बंद कर उंघने लगा।

पुलिस के सिपाही बरामदे में थे। वे जब भी कमरे में आते, कमरे में बंद भीड़ के अंदर एक सकपकाहट होती और एक अनिश्चित भय व्याप जाता! अभी ही दो आदमियों को पकड़ कर वे बाहर घुप अंधेरे में ले गये थे, बदूकों के कुंदों और बूटों से उन्हें बुरी तरह पीटा था और फिर घसीटते हुए कमरे में डाल गये थे। उन दोनों की कमीजें फट गई थी, उनमें खून लगा था। पता नहीं, उनके शरीर का कौन-सा हिस्सा जख्मी हुआ था और उनके चेहरों पर बूटों का निशान था या नहीं, हम नहीं देख सके थे। उन में से एक हमारे ही करीब आकर गिरा और बेहोश हो गया। दूसरे युवक ने कमरे में खड़े होकर लोगों को सम्बोधित किया-भाइयो, आप लोग यह जुल्म देख रहे हैं तो ...सुबह होने पर हम बदला लेंगे। हमें इसलिये पीटा जा रहा है कि हमारा कोई न कोई अपराध होना ही चाहिये और हमें कोई न कोई अपराध स्वीकार कर अभियुक्त बनने से इनकार नहीं करना चाहिये।

वनमालिनी अपने पास घायल बेहोश पड़े युवक को देखकर व्यग्र हो गई। वह फौरन उठी और बच्ची को मेरी गोद में डाल दिया और बेहोश

युवक के पास जाकर उसका माथा सहलाने लगी। उसके माथे से बहते खून को आंचल से पोंछने लगी। उसने दरवाजे पर खड़े पुलिसवालों को सुनाकर कहा—हम कसाईखाने में डाल दिये गये हैं। कसाई रात भर में न जानें कितनों को जिबह करेंगे।"—

उसने मेरी ओर देखकर कहा—मैं थोड़ी बहुत नर्सिंग जानती हूँ, लेकिन सामान कहाँ है, इसकी बेहोशी टूटे कैसे, पानी भी तो नहीं है!"—फिर उसने ही चिल्लाकर पुलिसवालों से पानी मांगा। फिर कई आदमियों ने एक साथ पुलिस से पानी की मांग की। पुलिस वाले एक बड़े से टीन में पानी अंदर डाल गये। वनमालिनी पानी पाकर उस घायल बेहोश युवक का उपचार करने लगी।

जब वनमालिनी ने दुबारा मेरी ओर मुँह घुमाया तो मैंने देखा कि उसके चेहरे पर खून लगा हुआ है। मैंने अनुमान लगाया कि उसने उसी आंचल से अपना पसीना पोंछा है, जिससे उसने घायल युवक के माथे का खून पोंछा था। इस बीच उसने एक बार भी अपनी बच्ची की ओर ध्यान नहीं दिया, उसके सामने घायल बेहोश पड़ा युवक था। □□

फर्क

✶

थोड़े दिन पहले ही इशापुर गाँव में खेत मजदूरों और किसानों का संगठन बना था। भूदानी नेता बेनी बाबू ने घर-घर घूम कर किसानों से अपील की थी कि तुम लोग अब किसी संगठन या झण्डे के नीचे क्यों जाओ, मैंने जमींदार से पूरा गांव भूदान में ले लिया है। इसलिए अब बेदखली का सवाल ही नहीं उठता। जयप्रकाश बाबू जल्दी ही आने वाले हैं और "आदर्श सर्वोदयी गाँव" की नीव पड़ने वाली है। लेकिन गाँव के लड़कों ने उनकी बात नहीं मानी थी। जब से खेत मजदूरों और बटाईदारों के एक आध लड़के पढ़ने लगे हैं, तब से वे किसी की बात नहीं मानते। इसीलिए 'आदर्श गाँव' का उद्घाटन समारोह टलता चला गया था। और उस दिन उनके कलेजे को बहुत गहरी चोट लगी थी जिस दिन भगलू बटाईदार के लड़के बिशू ने कह दिया था—बेनी बाबू, आपको कोई दूसरा गांव नहीं मिलता जो आप जमींदार साहब से ले लें। हम गरीबों के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हैं? आपको चुनाव लड़ना नहीं है, तब आप क्यों इस झमेले में पड़ रहे हैं। शिवजी बाबू खेत आपको दान देंगे, खेत बोयेंगे किसान और फसल होने पर शिवजी बाबू के गुण्डे बन्दूक लेकर आयेंगे और फसल काट कर ले जायेंगे। ठीक उसी

समय आपका आविर्माव होगा और फसल के दूसरे छोर पर लाठी-तीर-माला-गँड़ासा लिए खड़े किसानों के सामने आप छाती खोल कर पड़ जायेंगे कि पहले मुझको मारो, मैं जिन्दा रहते हिंसा नहीं होने दूँगा। आप बौखलाती भीड़ को हिंसा-अहिंसा पर चौपाई सुनायेंगे और इस क्षण-भंगुर संसार के मायाजाल में न फँसने तथा अहिंसा के द्वारा ही आसुरी शक्तियों को पराजित करने की रामधुन गायेंगे। तब तक जमींदार के गुण्डे हवाई फायर करते हुए फसल लेकर चले जायेंगे। और फिर आप संतोष की लम्बी सांस खींचते हुए शहर चले जायेंगे अपने बड़े नेताओं को बताने कि अहिंसा के ब्रह्मास्त्र से मैंने आज एक दानवी हिंसा पर विजय प्राप्त कर ली है और बहुत बड़े खूनखराबे को रोका है। दूसरे दिन आप फिर जमींदार की देहरी पर पहुँचेंगे और सत्संग होगा। नेताओं और अफसरों के इस अहिंसक विजय समारोह में बगल का गाँव भी आपको दान में मिल जाएगा। फिर आप वहाँ भी खून खराबा रोकने के लिए पहुँच जायेंगे। आपकी यह लीला अनन्त है बेनी बाबू, और इस अनन्त की चक्की में हम गरीब पिस गए हैं—आप हमें क्षमा करिए। हम गरीबों को हमारी ही हिंसा पर छोड़ दीजिये। कम से कम अपनी फसल की रक्षा ही कर लेंगे, जिससे हमें साल भर भूखों मरना नहीं पड़ेगा।

इस लड़के ने उनकी आस्था हिला दी थी। बेनी बाबू अगर गलती से भी उस गाँव से गुजरते तो लड़के 'भूदानी जा' 'भूदानी जा', के नारे लगा कर चिढ़ाने लगते थे।

बिशू भगलू बटाईदार का लड़का है। भगलू अपना पेट काट कर बिशू को पढ़ा रहा है। बिशू के साथ इसी गाँव के दो लड़के और हैं जो पढ़ रहे हैं। बेनी बाबू ने थाने भर में कह दिया है कि इशापुर के कच्ची उम्र के लड़कों में दायित्वहीन उत्साह है। वहाँ के बड़े-बूढ़े उन्हें रोकते नहीं। किसी दिन सब भारतीय आदर्श उस गाँव में धराशायी हो जायेंगे। तब हम क्या कर सकते हैं। हमारी जनम-जनम की साधना

पराजित हो जायेगी। यह कर्म-भूमि मरणभूमि में बदल जायेगी। यह सब मुझसे नहीं देखा जायेगा। मैंने उस गांव में जाना छोड़ दिया है। अब उस गाँव में उन तत्वों का आवागमन प्रारम्भ हुआ है जो उपद्रवी है, जो हिंसा में विश्वास करते हैं। इशापुर गाँव में अब प्रभात फेरी नही होती, शाम को लाल झंडा लेकर जुलूस निकलता है। जो नारियां एक दिन भी प्रभात फेरी में नहीं आईं, रामधुन नहीं गाया, वे जुलूस में जा रही हैं, इन्किलाब गा रही हैं। धर्म-चर्चा के बदले किलास होता है। बजरू अहीर जो भैंस चराता था और समझता था कि डेढ़ गज चौड़ी भैंस की पीठ ही पृथ्वी की चौड़ाई है, जिसकी दुनिया सिमट कर भैंस की पीठ पर चली गई थी, वह अब नेता बन गया है, भाषण देता है। उस दिन वह कन्धे पर लाठी लिए सड़क पर मिल गया। मैंने कहा—'बजरू, यह लाठी लेकर घूमना अच्छी बात नहीं है।' वह कहने लगा कि बेनी बाबू, मैं तो बचपन से ही लाठी लेकर घूमता हूँ। तब मैंने उसे समझाया कि तब तुम भैंस को मारने के लिए यह लाठी रखते थे, अब आदमी को मारने के लिए यह लाठी लेकर घूम रहे हो बजरू। बहुत फर्क आ गया है—बहुत। अगर इतनी समझदारी आ गई है कि तुम भैंस की पीठ पर से जमीन पर उतर आये हो तो कुछ और सोचो। लेकिन वह नहीं माना, कहने लगा, 'जितना सोचूंगा, लाठी उतनी ही मोटी होती जायेगी बेनी बाबू। अब मैंने भैंसों की संगत छोड़कर आदमियों की संगत पकड़ ली है।"

बेनी बाबू आगे बढ़ना ही चाहते थे कि सड़क के चौमुहाने से बिशू ने उन्हें पुकारा। वे ठहर गये। वे जानते है कि यही लड़का खुराफात की जड़ है और लाल झण्डा के नेताओं को बुला लाता है और कहता है कि खेत-मजदूरों का नेता खेत-मजदूर ही होगा, कोई भूदानी या ज्ञान-दानी नही। इसीलिए उसने बजरू चरवाहे को नेता बना दिया और ग्वाला कुल में हलचल मचा दी। सब चमार, दुसाध, डोम, हलखोर,

जोलाहा, धुनियाँ, कोइरी, कोहार, अहीर-बिलार एक हो गये हैं। कहते हैं, बजरू ही हमारा नेता है और इस बजरू की डुगडुगी कोशी की पंकिल माटियों में बजने लगी है। हालत यहाँ तक नाजुक है कि ऊँची जातियों के कुछ सिरफिरे लोग भी इनका साथ दे रहे हैं। उस दिन ढोलबज्जा में इन्होंने पांच हजार नंग धड़ंगों का प्रदर्शन किया था। नवगछिया में तो बीस हजार का अस्त्र प्रदर्शन। बेनी बाबू ने सोचा कि शायद इस लड़के को अहिंसा के लिए राजी कर लिया जाय तो इस खौलती हुई भीड़ को रोका जा सकता है, क्योंकि उन्ही के बीच का पढ़ा-लिखा बच्चा उनका सबसे विश्वास-पात्र है। इसलिए बिशु के हाथों एक बार अपमानित होने पर भी, उसके पुकारने पर बेनी बाबू रुक गये। बिशू के करीब आने पर बेनी बाबू मुस्काये, उन्होंने कहा—'तुम लोग इस बजरू को एम. एल. ए. बना कर ही छोड़ोगे। तुम लोगों ने जिस तरह जमीन तैयार कर ली है कि हुआ ही समझो।

बिशू के बोलने के पहले ही बजरू बिगड़ गया। उसने कहा—"पंडितजी, हम लोग इस एमेलेपन पर थूकते हैं।'

लेकिन बिशू ने आगे बढ़ कर बात संभाली—"पंडितजी जरूरत पड़ी तो यह भी बना लेंगे, मगर हमारा उद्देश्य एम. एल. ए. बनना-बनाना नहीं है।"

बेनी बाबू ने जैसे बात लोक ली, सोचा लड़का समझदार हो रहा है, कहा—"सचमुच इन सत्तालोभियों और सत्ताभोगियों की कतार में शामिल नहीं होना है। यह सत्ता ही सम्पूर्ण विग्रह की जन्मदायिनी है, इससे जितना दूर रहो, उतना ही भला। देखते नहीं, मैं चुनावों में तटस्थ रहा करता हूँ। मैं तो निर्विकार चित्त सेवी हूँ।'

यह बात बिशू के लिए असह्य होती जा रही थी। उसने कहा—'पंडितजी, मगर हम इतना निर्विकार नहीं बन पायेंगे। हम इतना

समझ गये हैं कि इसी सत्ता ने हमारा सब छीन लिया है, इसलिए सत्ता-भोगियों के हाथ से इस सत्ता को ही छीन लो।'

बेनी बाबू सकपका गये—'यह तो पथ हिंसा का है और सत्ता के लिये दानवी युद्ध का हुँकार। तुम लोगों को पुनर्विचार करना चाहिये। आसुरी शक्तियां देवत्व के सामने ही पराजित होती हैं, अतः कर्म का आचरण देवता तुल्य ही होना चाहिये। स्थिति से द्रवित मैं भी हूँ लेकिन.........'

बिशू ने संजीदगी से कहा— यही बात जरा जमीदार साहब, बीडीओ साहब और दारोगा साहब को समझाइये।

बेनी बाबू ने कहा—'यही तो वे आसुरी शक्तियां हैं जिनके विरुद्ध हमें आध्यात्मिक स्तर पर संघर्ष करना है। भौतिकता के संघर्ष में हमारे अस्त्र आध्यात्मिक ही होंगे। क्योंकि सत्य हमारे साथ है और सत्य की प्राप्ति का संघर्ष यदि कुरूप हुआ तो सत्य भी कुरूप हो जायेगा। इसलिए हमें सावधान होकर ही सत्य के पथ पर बढ़ना है। बच्चो, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी पीड़ादायिनी और दीर्घ होती है। साधना में उतावलापन कैसा ....?

बजरू तब तक बुरी तरह खीज गया था, कहा—भूदानीजी, यह सत्त फत्त अपनी झोली में रखिए, हमको अब भरोसा अपनी लाठी पर है। जाकर उस जमीदार के बच्चे से कह दीजिये, हम उसकी एक नहीं चलने देंगे—हमने दो सौ बीघे जोत लिये हैं, धान भी काटेंगे। उसको अहिंसा पढ़ाइए; वह हमारा धान लूटने आयेगा तो कोसी बहेगी खून की। हम किसी को मारने नही जा रहे हैं; लेकिन हमें कोई मारने आयेगा तो हम उसे छोड़ेंगे नहीं।

इन बातों से बेनी बाबू को पसीना आ गया। सोचने लगे—हमारी साधना भूमि छूटी जा रही है। अगर यही हाल रहा तो आश्रम वन-भूमि होगी। जब मनुष्य से वितृष्णा हो जाती है तो आदमी खूंखार जन्तुओं के सहवास में जंगलवास चला जाता है।

"""लेकिन बिशू को सामने खड़ा देखकर उन्होंने बनवास की कल्पना त्याग दी और बजरू भी अपनी लाठी पटकता हुआ वहां से चला गया। उन्होंने समझा हिंसा जो वातावरण पर चढ़ आयी थी, उतर गई है। उन्होंने बिशू से पूछा—अच्छा वह जहर कहर की क्या बात है ?

बिशू बताने लगा—"""""" हमने तो एतराज किए, मगर गांव के बूढ़े उछल पड़े। उन्होंने समझा बहुत दिनों के बाद गांव में मिठास की हवा बही है। तीन दिनों तक हमारे प्रबल विरोध के बावजूद बूढ़ों ने दावत स्वीकार कर ली। हंडे चढ़ते गये, भोग बनने लगा। लेकिन यह खबर भी फैल गयी कि बिशू नहीं खायेगा। भोज के एक दिन पहले रात को जब बजरू काका के दरवाजे से अपने घर जा रहा था तो रास्ते में एक सफेद छाया ने मुझे रोक लिया। अंधेरे में मैं चेहरा तो नहीं पहचान सका, मगर आवाज पहचान ली। उसने मुझे रोककर कहा—"बिशू, सुना है तुम नहीं खाओगे, यह बहुत बुरा होगा। व्यवहार में होगा यह कि ऐन मौके पर आधा गांव नहीं खायेगा।

"""""शायद मैं खा भी लेता और मर भी गया होता। लेकिन आप तो जानते हैं, भोज चाहे जमींदार का हो, कारिंदे तो हमारे ही लोग होते हैं। ऐन मौके पर यह खबर फैल गयी कि मुझे जो शर्बत दी जायेगी उसमें जहर होगा। फिर क्या था ? पूरी बात ही रह गयी। कोई भी खाने नहीं गया। गाँव की औरतें सर पीटने लगीं। उस दिन हमारी माँओं ने हमें आँचल में छिपा लिया था, कहा—साँप ने डंस लेना चाहा था।""""""""""क्या सच है, मुझे उससे कुछ लेना देना नहीं। मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि एक विराट दानवीय षड़यन्त्र हमारे खिलाफ चल रहा है, वह जहर उसी की एक बूँद थी। लेकिन पंडितजी, आपकी हिंसा-अहिंसा की कसौटी पर यह जहर किस ओर जाता है। उसने बिना खून खराबे के मुझे खत्म करना चाहा था।

पंडित जी ने बिशू को कोई जवाब नहीं दिया—"हरि ओम्, भगवान रक्षा करें। जहाँ मैंने बीस वर्षों तक तपस्या की, मेरी इस कर्मभूमि की

यह दुर्दशा।' और पंडित जी आकाश की ओर देखते हुए वहाँ से चले गये।

बरसात शुरू हो गयी थी। कोशी की वेगवती धारा में इलाका डूबता जा रहा था। धान की फसल भी डूब रही थी। किसानों ने किसान सभा के नेतृत्व में दो सौ बीघे जमीन पर कब्जा कर खेती शुरू की थी। दिन रात का पहरा खेतों पर लगा हुआ था। बेनी बाबू सांपों के उत्पात से गांव छोड़ कर शहर चले गए थे और शहर के आश्रम में ही रह रहे थे। उन्हें गाँव से जो खबर मिलती थी, वह संघर्षों की ही होती थी। उन्होंने सुना था कि इशापुर गाँव प्रायः आधा उजड़ गया है और आधे से अधिक लोग गिरफ्तार होकर जेलों में हैं, तीन मारे गये हैं और पन्द्रह इसी बगल के अस्पताल में पड़े हुए हैं। बिशू और बजरू का नाम अखबारों में छपने लगा है। वे दस-दस हजार के जुलूसों का नेतृत्व कर रहे हैं, मिण्डा, लखनडीह, पारो आदि गाँवों की सभाओं में भी बिशू भाषण देने लगा है। जमींदार लोग भी जोगबनी और किसनगंज के इलाके से ट्रक से आदमी ला रहे हैं। किसानों ने एलान कर दिया है कि अब हम मुन्सिफी मुकदमा लड़ने शहर नहीं जायेंगे, सिर्फ फौजदारी लड़ने जायेंगे।

बेनी बाबू गठिया रोग से पीड़ित हो गये हैं। दिन-रात की बरसात में उनके शरीर को गांठों में सर्दी समा गई है। वे अब चलने-फिरने से भी लाचार हो गये हैं। वे दंतकथाओं के नायकों की तरह कहानी सुनते हैं—बिशू कोशी की कीचड़ भरी कगारों पर भरी बरसात में दस-दस कोस तक पैदल चलता है और दूसरी सुबह किसी गाँव में 'जबरिया कब्जा करो' अभियान का नेतृत्व करता है। बेनी बाबू के गठिया का दर्द दिन ब दिन तेज होता जा रहा है। उन्हें लगता है कि बिशू के आन्दोलन के घटाव-बढ़ाव के साथ उनके गठिये के दर्द का सम्बन्ध हो गया है। उन्हें यह भी लगता है कि यह आन्दोलन इस शहर तक भी

आयेगा। आज शाम को ही उन्होंने अखबारों में बिशू का वह बयान पढ़ा है, जिसमें लखनडीह कांड का वर्णन है कि किस तरह से जमींदारों के गुण्डों और पुलिस ने निर्दयी किसानों पर हमले किये। लेकिन बेनी बाबू के लिये सबसे पीड़ादायक खबर यह थी जिसमें यह बताया गया था कि 'बिनोवा नगर' में बजरू ने किसानों की सभा की है और सर्व-सम्मत प्रस्ताव पास कर बिनोवा नगर का नाम 'लाल नगर' रख दिया गया है और यह भी कि ब्रजेश बाबू की उस भूमि पर भी उन्होंने हल चढ़ा दिये हैं जिसका दान उन्होंने नहीं किया था। यह पीड़ा तब और बढ़ जाती है जब उन्हें याद आता है कि ब्रजेश बाबू उनके असहयोग आन्दोलन के सहयोगी थे।
युद्ध मोर्चे से आने वाली खबरों की तरह ही चौंका देने वाली खबरें कोशी की हरी वादियों से रोज-रोज आ रही हैं। बेनी बाबू एक स्थल पर आकर निराश हो जाते हैं कि वे फिर कोशी की गोद में लौट नहीं पायेंगे। उनके गठिये का दर्द इतना बढ़ जाता है कि उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है। वे अस्पताल में जाकर देखते हैं कि कई परिचित चेहरे घायल होकर अस्पताल में पड़े हैं। वे उनसे कहते हैं कि मैं चल-फिर सकता तो तुम लोगों की सेवा करता। मैं लाचार हूँ, मेरे हटते ही कोशी का पवित्र जल लाल हो गया है। खून की धारा बह रही है। हे राम यह सब क्या हो रहा है?
रात गहराती है, बेनी बाबू दर्द से कराहते हैं। उनके बगल का किसान भी दर्द से कराहता है। बेनी बाबू कहते हैं, गठिया में बड़ा दर्द है भाई, मैं फिर उठ कर खड़ा नहीं हो पाऊँगा।
बेनी बाबू के बगल का किसान भी बीच-बीच में कराह उठता है। बेनी बाबू उसे सांत्वना देते हैं। किसान कहता है—"पंडित जी, इन दोनों दर्दों में बहुत फर्क है। मुझे मालूम है, आपको कोई चोट नहीं लगी है। बेनी बाबू अपना दर्द भूल कर उदास हो जाते हैं। सोचते हैं—बिशू होता तो कहता—'एक दर्द हिंसक है और दूसरा अहिंसक।' □□

…फिर उसी कहानी की

★

तहखाने जैसी इस अंधेरी कोठरी में दुलहन मामी, उनका डेढ़ वर्ष का बच्चा बेहोश पड़े हैं। रात ज्यों-ज्यों ढल रही है, मेरी घबड़ाहट त्यों-त्यों बढ़ रही है। मैं नहीं कह सकता कि इन दोनों में कल की सुबह कौन देख पायेगा। मैं सिर्फ दुलहन मामी की उस बच्ची के प्रति आश्वस्त हूँ, जो बुखार में माँ-माँ बड़बड़ाती हुई, मेरी जाँघ पर सर रख कर सो गई है। वह कल सुबह जरूर जग जायेगी और इस प्रकार इस तहखाने में मुझसे बात करने के लिये कोई एक फर्द जरूर मिल जायेगा। मेरे कपड़ों पर खून के बेपनाह छींटें हैं। सीने के पास सफेद कुर्ते पर दुलहन मामी के दाहिने गाल और आधे ललाट की तस्वीर इस-कदर उभरी हुई है, जैसे किसी ने फुरसत में आँकी हो। मैं इस वक्त अंधेरे के लबादे में लिपटा हुआ इस तहखाने में बन्द हूँ, वर्ना मुझ पर सर से पाँव तक खून के इतने धब्बे हैं कि दिन के उजाले में किसी होशमंद आदमी ने मुझको देखा होता तो वह चीख मारकर बेहोश हो जाता। मेरी आँखों में अब भी उस डेढ़ वर्ष के बच्चे की गेंद की मानिन्द उछल कर फुटपाथ पर गिरी देह नाच रही है, जिसके माथे से बही खून की धार बड़ी तेजी से पनाले के पानी से जा मिली थी। बमों के धमाके और

धुए ँ में मैं यह नहीं देख सका था कि उन्होंने भाभी की गोद से बच्चे को कितनी लड़ाई के बाद छीना था और उसे कितनी दूर से फुटपाथ पर फेंका था। मुझे फुटपाथ पर सिर्फ छटपटाता हुआ बच्चा नजर आया था। हर तरफ भगदड़ मची हुई थी, बम गिर रहे थे। हम धुएँ के एक अथाह सागर में फेंक दिये गये थे।

हम एक जुलूस में शामिल थे, और वे भी जुलूस बना कर ही आये थे। उनके हाथ में भी झंडे थे। उनके पास भी कुछ नारे थे। हमले करते वक्त उन्होंने कहा था, 'हिंसा की राजनीति करने वालों को हम जान से मार डालेंगे।'

इस शहर में गाढ़ा अंधेरा है। मैं नहीं कह सकता कि उस हमले के बाद बलवाइयों ने ही बिजली की लाइन काट दी थी या रोशनी की राशनिंग है या हमले के विरोध में बिजली मजदूरों ने हड़ताल कर दी है। मैं सिर्फ इतना देख रहा हूँ कि पूरा शहर इस कोठरी की तरह ही अंधेरे के तहखाने में दफन है। मैं इस कोठरी की ढिबरी भी नहीं जला सकता। क्योंकि आधी रात बीतने के साथ ही ढिबरी का तलछट तक जल गया था। मैंने भाभी के कमरे के टिन के हर डब्बे को उलट-पलट कर देखा है। लेकिन उनसे तेल की एक बूंद भी नहीं गिरी है। मैं माचिस की तीली जला कर देखता हूँ—भाभी के माथे पर बँधी पट्टी से खून की धार बह कर गाल पर सूख गई है। मैं कपड़ा गीला कर उसे पोंछता हूँ। लेकिन मेरे स्पर्श से भाभी का चेहरा काँपता भी नहीं है। मैं नहीं सोच पाता कि वे सोई हैं या बेहोश हैं।''''मैं अपनी घबराहट अँधेरे के हवाले कर दीवार से पीठ टिका लेता हूँ। और खुद अपना सर टटोलता हूँ।''''

कल जब मैं घर से चला था, तब स्टेशन से ट्रेन की भीड़ में खड़े-खड़े अकेला हो गया था और सोच रहा था—'धनेश जेल में है। शाम के इस धुंधलके में बांस के बेड़ों से बना, टीन की छत और बिना दरियों वाला कमरा धुएँ से भर गया होगा। दुलहन भाभी बिना चौखट के

दरवाजे पर गाल पर हाथ धरे बैठी होंगी। उनके दोनों बच्चे उनके कंधे और माथे से आँचल को नोच-नोच कर गिरा रहे होंगे। उनको हिलती-डुलती न देख दोनों बच्चे उनकी पीठ पर लुढक कर रो रहे होंगे। उनके पास करने के लिये कोई काम न होगा, उनका अपना चूल्हा न जला होगा। वे आँगन में जले हुए अनेक चूल्हों से उठते हुए धुएँ को देख रही होंगी। फिर उनके गालों पर आँसू की बूंदें लुढ़क आई होंगी। उन्होंने आँसू की बूंदों को धीरे से होंठों पर महसूस किया होगा और जब होंठों पर जीभ घुमाई होंगी, तब खारे पानी के स्वाद से उन्हें सुकून मिला होगा। वे बच्चों को बहला न पाई होंगी, उन्हें चुप न करा पाई होंगी। वे रोते-रोते थके होंगे और उनकी जाँघ पर लुढ़क कर सो गये होंगे। दरवाजे पर से उनका उठना मुश्किल हो गया होगा। घर में अँधेरा होगा। चूहे और तिलचट्टे रेंगते होंगे। घर में उबालने के लिये कोई दाना न होगा। मच्छड़ों की भनभनाहट से कान बहरे हो गये होंगे। गालों पर चकत्ते उभर आये होंगे ""और जब मैं पहुँचूँगा तब देखूँगा कि भाभी दरवाजे पर ही अपने दोनों बच्चों को जाँघ पर लिये लुढ़क कर सो गई हैं।

लेकिन मैं सोचता हूँ, अगर यह कहानी है, जिसने मेरी नींद हराम कर दी है, तो इसकी इब्तदा यहाँ से नहीं होती। यह वहां से भी शुरू नहीं होती, जब धनेश ने फिलसफी में एम० ए० पास करने और इनकलाबी लीडर बनने का मंसूबा बाँधा था। लेकिन एक हादसे की तरह ही उस पर इश्क का फालिज गिरा था, जिसने उसे मायूस बना दिया और यह शहर छोड़कर जिंदगी के आखिरी दिन कहीं भी काट लेने जैसी बातें करने लगा था। फिर उसके बाप ने बेटे को बहकते हुए देखकर उसे घर दबोचा था और गाँव ले जाकर उसे एक औरत के खूंटे से बाँध दिया था।

या यह कहानी यहाँ से भी शुरू नहीं होती, जब दुलहन भाभी ने हमारी रात-रात भर की बहस से घबड़ा कर अपनी पड़ोसिन 'जगिया से पूछा'

था—'का हो, ई इनकलबवा का चोज है, ई कब आयेगा ? इसने तो हमारी नींद हराम कर दीहिस है।'
और उनकी पड़ोसिन जगिया ने जबाब दिया था, 'इनकलबवा आई-जाई ना, तोहरा खसम को नोकरिया खा जाई, तब जानोगी कि यह क्या चोज है।'—और उसके बाद हमारी जब भी बहस होती थी, तब दुलहन मामी हमारी ओर ऐसी डरावनी नजरों से देखती थी कि हमें खुद उनसे डर लगने लगता था।

अथवा यह कहानी उससे भी बहुत पहले से शुरू होती है। मुझे इतना याद है कि भाभी के आने से पहले हम सिर्फ दो थे और यह भूल गये थे कि इस शहर में और भी दो लाख आदमी रहते हैं, सात कारखाने हैं, हजारों मकान और दूकानें हैं। स्कूल न होने पर आमतौर से हमारी दोपहरी शहर से दूर दराज किसी तालाब में मछली पकड़ने, बनैले कांटेदार पेड़ों की झाड़ियों, बांस की झुरमुटों और आम के बगीचों के चक्कर काटने में बीत जाया करती थी। हमारी शामें हुगली नदी के किनारे बैठकर पानी में कंकड़ फेंकने और यह सोचने में बीत जाया करती थीं कि यह जाने वाली नाव अगर बीच नदी में ही उलट गई तो हमारे कारखाने के हाजिरी बाबू गुब्बारे जैसी तोंद लेकर पानी में किस प्रकार तैरेंगे! और रात का खाना खाने के बाद चायखानों, पानखानों में अड्डेबाजियां करने का रिवाज हमने भी अपने बाप-दादों से सीख लिया था। और हमारी यह होड़ इतनी तेज थी कि हम उन दिनों इस दो लाख की आबादी वाले शहर में ऐसे लोगों की तलाश किया करते थे, जो रात को जागने में हमसे भी अधिक रिकार्ड रखते हों।

लेकिन हम चाहे जहां भी होते थे, हमारे बीच कभी न खत्म होने वाली बहस यह थी कि अगर कोई मजदूर अपना पेट काट कर अपने लड़के को पढ़ा दे तो उसे क्या बनना चाहिए। कभी कभार दो-चार महीनों के बाद हमारी बहस को किनारा तब मिल जाया करता था, जब हम पानी

टंकी मैदान में अस्लम चा का भाषण सुनते थे—मजदूर का नेता मजदूर का बेटा ही होगा, कोई सफेदपोश नहीं। तब हम मुट्ठी बाँधकर अहद करते थे कि अब हमें मजदूर नेता बनने की तैयारी में जुट जाना चाहिये।

लेकिन घनेश की मुश्किल यह थी कि उसके बाप ने गांधी जी को देख लिया था। और यह पूंजी हमारी कुली लाइन के पाँच हजार मजदूरों में और किसी के भी पास नहीं थी। उसका यह गाँधी-दर्शन पागलपन के हद तक चला गया था। गाँधी के हाथों की लम्बाई,उनकी बकरी के रंग, और लाठी के पोर के बारे में बताने का एकमात्र अधिकार उसे ही प्राप्त था। अगर इसमें कोई दखल देता तो वह मरने-मारने पर भी अमादा हो जाता।

लेकिन घनेश के बाप का भ्रम और जीवन एक ही साथ टूटा था। यह तब हुआ था, जब घनेश के बाप को साठसाला योजना में छँटाई हो गई थी। तब उसकी उम्र पचास की भी नहीं थी, मगर साठ वर्ष का बता कर उसे कारखाने से निकाल दिया गया था। उसने अपने गांधी-दर्शन का प्रमाण-पत्र लेबर अफसर को बार-बार दिखाया था। अपनी खद्दर की कमीज का दामन उठा कर कारखाने के हर साहब के पास घूमता रहा। वह मैनेजर तक को अपने असली गाँधीभक्त होने के सबूत देने गया, मगर दरबानों ने उसे मैनेजर से मिलने भी नहीं दिया। अन्त में वह अपने बड़े भाई को लेकर लेबर अफसर के पास पहुँचा। उसके बड़े भाई ने हुजूरे आला में अरदास लगाया, 'हुजूर ! यह मेरा छोटा भाई है, यह पचास का है और मैं पचपन का। इसकी क्यों छँटाई हो रही है ? हुजूर, यह साठ का नहीं है।

—मगर रजिस्टर में तो साठ लिखा हुआ है !

'हुजूर यह मुझसे छोटा है, मैं अब भी काम कर रहा हूँ। तब उसकी छँटाई क्यों होगी ?'

—ठीक है, तब तुम्हारी भी हो जायेगी ?...

फिर महीनों तक घनेश का बाप हर खद्दर-धारी का दामन पकड़ कर अपना खद्दर का दामन दिखाता घूमा, मगर उसकी नौकरी वापस लौटकर नहीं आई और वह बिलखता हुआ गांव चला गया।

उसके बाद ही घनेश अपनी कोर्स की किताबें फेंक-फांक कर बदली मजदूरों की कतार में शामिल होने के लिये कारखाने के गेट के अन्दर चला गया। हमें लगा, जैसे वह एक सनसनीखेज जुनून के साथ ही कारखाने में गया है। वह कारखाने में घुसते ही हमारी बहुत सारी हिचकिचाहटों को नोंच-नोंच कर चियड़ा करने लगा। मुझे लगा, जैसे उसका कोई अपना सपना नहीं था, जो टूटा हो, वह हमारे सपनों को तोड़ रहा था। उसने हमारे बाप-दादों को इस परम्परा को सरेआम तोड़ दिया कि चन्दा तो चुपके से लाल झंडा यूनियन को दे आयेंगे, मगर मेम्बर तिरंगा झण्डा यूनियन के बने रहेंगे, हमारी कुली लाइन में दोनों यूनियनों के दफ्तर अगल-बगल थे। एक में गांधी का फोटो टँगा था और दूसरे में मार्क्स का। घनेश ने ही कुली लाइन में घूम-घूमकर पहली बार अपने चाचाओं-काकाओं और भाइयों को बताया था कि गांधी बाबा और मार्क्स बाबा में सिर्फ लाठी और दाढ़ी का ही फर्क नहीं है। अपनी इस नयी शुरुआत से घनेश पाँच हजार मजदूरों की नजरों में लगातार ऊपर उठता जा रहा था। बाबू बनने के सपने टूटने, मजदूर बनने और उसके बाद ही मजदूर लीडर बन जाने में घनेश को अधिक समय नहीं लगा था। ऐसा लगता था, जैसे घनेश हर सुबह एक नई सीढ़ी चढ़ रहा है। हर शाम उसके चाहने वालों में इजाफा हो रहा है। बाज मौकों पर तो यह भी लगा कि पाँव के बल चलता हुआ यह शहर घनेश की एक पुकार पर सर के बल चलने लग सकता है।

घनेश बदली मजदूर होकर भी गेट मीटिंगों में भाषण देने लगा था। चलन के अनुसार बाप की जगह उसे कारखाने में ले तो लिया गया था

मगर उसके परिवार के शुभचिन्तकों की नजरों से वही डर झाँकने लगा था, जो जगिया ने दुलहन भाभी की नजरों में भरा था। 'ई इनकलबवा आई जाई ना, मगर हमनी के नोकरिया खा जाई! इसके पहिले भी नथुनी और वोरेन बौराये रहे, उनकी नौकरिया चली गई।'

सबसे ज्यादा दहशत में दुलहन भाभी थी। हमारी रात वाली बैठकें अब धनेश के घर में ही हुआ करती थीं। धनेश ने किरासन तेल का स्टोव खरीद लिया था और दुलहन भाभी चाय बनाने के लिये आ गई थी। दुलहन भाभी चाय-वाय देने के बाद एक कोने में घबड़ाई हुई और आशंकाओं से भर कर बैठ जाती और हमारी बातों के बीच से अपनी आशंकाओं के अनुकूल किसी दुर्घटना की खबर खोज निकालने की कोशिश करतीं। उस समय उनके अन्दर शंकाओं का बवंडर चलता होता, मगर उनका चेहरा इतना भाव शून्य होता कि उनमें और पुतले में फर्क करना मुश्किल हो जाता। कभी-कभी यह देखकर हमें घबड़ाहट होती। तब हम अपनी बहस बीच में छोड़कर भाभी की ओर मुखातिब होते। बेहद कोशिशों के बाद हम उनके चेहरे पर रौनक लाने में सफल होते। यह भी कभी-कभार ही होता था। आमतौर से हम भूल ही जाते कि भाभी भी कमरे में है और एक कोने में लुढ़क कर सो गई है और सपने देख रही हैं,—धनेश की नौकरी चली गई है, हड़ताल हुई है, जुलूस निकला है, पुलिस आई है, गोली चली है, धनेश घायल होकर जेल चला गया है।....और फिर वे अचानक चौंक कर उठ जाती और आँख मल-मल कर धनेश को अजनबी की तरह देखने लगतीं।

भाभी के प्रति प्यार जताने का उसका तरीका भी अजीब था। जब वह उनको गुमसुम और भरे-भरे से बैठा हुआ देखता, तब हम लोगों को उनकी ओर मुखातिब कर कहता, 'देखो, देखो, अब रोयेगी, रोई-रोई-रोई!' और भाभी फट से रो पड़ती। संगमरमर के पत्थर जैसा जमा उनका चेहरा जैसे किसी जलजले से अचानक काँप उठता और आँखें

छलछला आतीं। घनेश कहता, 'चलो अच्छा ही हुआ। जब बादल घिरे थे, तब उन्हें बरसना ही चाहिए था। अब जी हल्का हो गया होगा।' सचमुच ऐसा ही होता। जैसे वे आँसू न हों, ताजा हवा का हलका झोंका हो, जो उनके चेहरे से मनहूसियत के गर्दो-गुब्बार को झाड़कर उन्हें खिला गया हो, भाभी का कल्पनातीत सुन्दर चेहरा मिट्टी की ढिबरी की रोशनी में अंगारे जैसा दमक उठता और तब घनेश बेहद ही भोलेपन से कहता,'मैं नहीं समझता कि एक ही कमरे में दो चिराग जलने का क्या मतलब है। मैं यह मिट्टी की ढिबरी बुझाये दे रहा हूँ।

इसके बाद वह उठ खड़ा होता और कहता कि, 'इस बार तो मैं चाय बनाऊँगा, और आपको पिलाऊँगा, आप नहीं समझतीं कि बिना चाय पिये वह डर नहीं भाग सकता, जिसमें आप डूबी रहती हैं। फिर डर में घिर कर कोई आदमी जिंदा रह सकता है ? अचरज है कि आप डर के अलावा कोई और जिंदगी नहीं जीतीं।'

लेकिन इन सब बातों का कोई जवाब भाभी के पास नहीं होता। वे सिर्फ टुकुर-टुकुर घनेश की ओर देखती रहतीं। मैं घनेश से चुपके से कहता, 'तुम इनके मगज में कुछ पोलिटिक्स घुसेड़ो, सिर्फ लाड़-प्यार से क्या होगा।'

इस पर घनेश अपनी दोनों हथेलियों को सटा कर कहता, 'मगज का वह किवाड़' अभी इस तरह बन्द है कि पालिटिक्स की चर्चा से ही उस पर दहशत छाने लगता है।'

मैं नहीं जानता कि भाभी के दिमाग का वह किवाड़ कब खुला था। मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि कल जब अनेक दिनों बाद भाभी से मिलने आया था, तब अपनी आशंकाओं, जो मुझे ट्रेन में घेरे रहीं, के विपरीत भाभी को पाया। मैंने उनके कमरे में एक राजदार हलचल देखी। दुलहिन भाभी आँगन में कोयले के चूल्हे पर लेई पका रही थीं। एक निहायत ही कम उम्र का लड़का उनके कमरे में बैठा पोस्टर लिख रहा था।

आंगन में चहल-पहल थी। हाथ से लिखे पोस्टर आंगन में बिखरे हुए थे।

भाभी ने मुझको देखते ही गले लगा लिया और मुझ पर खुशियों की बौछार कर मुझे अवाक बना दिया। मैं जिस उजाड़ और मनहूसियत की कल्पना करता हुआ वहाँ पहुँचा था, वैसा कुछ भी वहाँ नहीं था। भाभी ने उसी व्यस्तता में डूबे हुए मुझसे बैठने के लिए कहा, 'अरे तुम आये, हम तो सोचते थे, खानाबदोशों की यूनियन करते-करते तुम खुद ऐसे खानाबदोश बन गये होगे, जिसको अपने पिछड़े पड़ाव का नाम तक भी याद न हो।'

भाभी का यह वाक्य सुनकर मैं चौंक गया। यह वाक्य मैंने ही कहे थे। भाभी को ज्यों के त्यों याद हैं, उन्होंने इसे रट लिया है। मैं जिस कारखाने में यूनियन करता था, उस कारखाने को कम्पनी ने बन्द कर तीन हजार मजदूरों को अपने दूसरे कारखानों में बिखेर दिया था। इन उजड़े मजदूरों के दस्ते खानाबदोशों की तरह इस शहर से उस शहर घूम रहे थे, मुझे कई शहरों को एक साथ जोड़ने के लिये इस शहर से उस शहर मजदूरों के पीछे-पीछे लगातार दौड़ना पड़ रहा था। उसी समय मैंने यह बात कही थी। भाभी ने पूछा 'अब वे सब कहाँ हैं।'

'उन्हें शहर-दर-शहर दौड़ाते-दौड़ाते गाँव तक दौड़ा दिया गया। वे अब सब गाँवों में मारे-मारे फिर रहे हैं। बीच-बीच में आते हैं, कम्पनी के सब कारखानों के दरवाजे खटखटाते हैं, धरना देते हैं. तब कुछ पकड कर जेलों में डाल दिये जाते हैं, और कुछ गाँवों को लौट जाते हैं।

भाभी का नथुना फड़क गया था, 'मुर्दों को कौन समझाता। तुम ने कहा था उनसे—कहीं मत जाओ, यहीं डटे रहो, इस कारखाने की ईंट-ईंट उखाड़ लो। जो तुम्हें रोजगार न दे, उस कारखाने को खड़े रहने का क्या अधिकार है!'

—भाभी आप को पूरा भाषण याद है!

—भाषण ही नहीं, उसके बाद वाला भी याद है। दलाल यानी कि मेरे ससुर के दोस्त सब उनके पीछे लग गये थे। उन्होंने कहा था, 'अपन को क्या, कहीं भी काम मिले, करना है। ई शहर न सही, उ शहर! करगहिया ढोलक बाजन रहे, सनहकिया भाँड़ बिराजत रहे। ''''हूँ, अब किस तरह बिराज रहा होगा, सनहकिया भाँड!
लेकिन, भाभी उन पर बिफरने से काम नहीं चलेगा, उन्हें बहकाया गया था, वे कहाँ समझ पा रहे थे कि वे अपना ही नुकसान कर रहे हैं।
—लेकिन, वे बहके ही क्यों?
—भाभी, इसका जवाब इतना सीधा नहीं है।—सच पूछो बबुआ जी तो मुझे गुस्सा इन्हीं पर आता है। ई अगर ठीक रहते तो कौन माई का लाल था, जो कुछ बिगाड़ लेता। उस समय मैं कुछ भी नहीं समझती थी। (भाभी ने यह इस अन्दाज से कहा जैसे अब बहुत कुछ समझ रही हों।) फिर भी; वे जब तुम्हारे पास आते थे और यह कहते थे कि बबुआ जी, हमार पइसवा ही कम्पनी से दिलवा दो, हम गाँव चले जाँय, तो मेरा जी करता कि उन्हें झाड़ू लेकर दौड़ाऊँ। वे नहीं सोचते थे कि वे गाँव में जाकर आग-भउर खायेंगे, क्या करेंगे! तुम जानते ही हो, उसमें मेरे एक काका भी थे। मैंने उनको इतना झपेटा कि रोने ही लगे। कहने लगे, बेटी होकर ऐसी बात करती हो!'
—'फिर!'
—फिर क्या करती, वे भूखे थे, उन्हें खिलाने लगी। खाते भी जाते थे रोते भी जाते थे। उन्हें खुद पता नहीं था कि वे क्यों रो रहे हैं। नतीजा निकला कि मैं भी खुद रोने लगी!
—भाभी, क्या आँसू सचमुच इतना कारगर हथियार है?
—हाँ, अपन के लिये तो हइये है।
मैं अवाक था। इतनी देर में भाभी ने न कुछ अपने बारे में बताया और न कुछ मेरे बारे में पूछा। मैं जानना चाहता था कि धनेश के जेल

में रहने पर उनकी जिन्दगी कैसे चल रही है, उन पर क्या गुजर रहा है। उनका खर्च कैसे चल रहा है। मुझे पता था कि घनेश के जेल के बाद उन्हें एक के बाद एक तीन मुहल्ले बदलने पड़े हैं। वे बच्चों को लेकर ही भागती रही हैं। गुण्डों ने हर जगह उनके सब सामान छीन लिये ? सब यूनियन आफिस बन्द हैं। पिछले डेढ़ बरसों में इस शहर में एक भी मीटिंग नहीं हुई है, एक भी पोस्टर नहीं पड़ा है। इस शहर के आधे दर्जन कार्यकर्त्ता मार डाले गये है। खुद अस्लमचा मार डाले गये हैं। गुंडों ने कई दिनों तक खुद भाभी को बन्द कर रखा था, पता नहीं उन पर क्या गुजरा हो। फिर भी उनके चेहरे पर कहीं कोई खरोंच नजर नहीं आ रही थी। मुझे भाभी से कुछ भी पूछने की हिम्मत नही हुई।

भाभी चाय बनाकर मेरे पास आई और मुस्कुराते हुए मुझसे, कहा, 'तुम विश्वास करोगे, मैं कल आधीरात को सुअरबाड़े में गई थी, मीटिंग करने। हम जो कल जुलूस निकालेंगे, उसमें सब मेस्तर-मजदूरिनें आयेंगी। तुम जानते हो, हम डेढ़ बरसों बाद जुलूस निकालने जा रहे हैं। अभी प्रचार नहीं है। आज रात पोस्टर लगाया जायेगा। फिर भी देखना हमारा जुलूस बहुत बड़ा होगा, पहले से भी बड़ा। वे समझते है, उन्होंने हमें खत्म कर दिया है। वे ऐसा नहीं कर सकेंगे। यही देखा, जब मैं यहाँ आई थी, तो इस बाड़ी का कोई आदमी मुझसे बात भी नहीं करता था। बच्चे तक मेरे बच्चों के पास आने से कतराते थे। बाहर से सब सम्बन्ध टूट चुका था। अपना कोई भी यहाँ नहीं आ पाता था और मैं बाहर नहीं निकल पाती थी। कई-कई दिन बिना खाये रहना पड़ा।"" लेकिन आज ! वह देखो, जब मैं तुम्हारे पास आ गई हूँ तो वह औरत बैठ कर लेई पका रही है। वह देखो, उस कोने में वह बुढ़िया जो पोस्टर समेट रही है, वह नहीं जानती कि उस पोस्टर में क्या लिखा है। यह लड़का जो पोस्टर लिख रहा है, इसका बाप इसको डंडा लेकर

खोज रहा होगा। मेरे ससुर की तरह ही इसके बाप ने भी किसी को देख लिया होगा। यह लड़का मार खा लेता है और फिर आकर पोस्टर लिखने लगता है, चार दिनों से ऐसा हो रहा है।'''''भाभी यह सब एक ही सांस में कहती जा रही थीं। कहीं रुकने का नाम नहीं लेती। मुझे जिन्दगी में पहली बार लगा कि मैं सिर्फ श्रोता हूँ।

"यह जुलूस हमारे लिये बहुत दाम रखता है। तुम आ गये हो। यह खबर शहर में कई दिनों से फैल रही थी कि तुम आ रहे हो। वे डरे हैं, जुलूस से भी और तुम्हारे नाम से भी। बस, यहाँ जरूरत है, जुलूस से पहले, एक ऐसे भाषण की जो अपग जन के मन से डर को दूर भगा दे। तुमको वही भाषण देना है, वहीं! पाँच गुंडों से पाँच हजार मजदूर डर गये हैं। तुम बता दो, लोगों को डरना नहीं चाहिये!"

मैं सोचता हूँ, भाभी को इस डर के खिलाफ सबसे तीखी लड़ाई लड़नी पड़ी है। यह लड़ाई उनकी तभी शुरू हो गई थी, जब जगिया ने उनके अन्दर यह डर भरा था।'''''मैं इस अंधेरे में माचिस की तीली जला कर उनका चेहरा देखता हूँ। इतना खून बहने पर भी उनका लाल-भभूका चेहरा और भी लाल हो गया है। किसी भी दर्द या शंकाओं की कोई भी खरोंच उनके चेहरे पर नजर नहीं आती। तीली बुझने के साथ ही मैं इस विश्वास के साथ दीवार से पीठ टिका लेता हूँ कि वे सचमुच गाढ़ी नींद में सोई हैं। □□

लोग जिन्दा हैं

★

रात का यह तीसरा पहर है। स्टेशन से इंजनों की सीटियाँ और उसके साथ ही डब्बों के कटने और लाइन बदलने की आवाजें आ रही हैं। ढलती रात के इस सन्नाटे में इस तरह की बेमकसद आवाजों पर शायद ही कोई ध्यान दे। आज कई दिनों के बाद सोनिया की नींद आधी रात के बाद ही खुल गयी है। लेकिन इन आवाजों से नहीं, वैसे ही! उसे लगा है, सचमुच सुबह हो गयी है। उसकी पलकों में कहीं भी उनींदापन नहीं है। जैसे बेचैनी, दर्द, कराह और छटपटाहट की उसकी रातें बीत गयी हैं। आज दिन और शाम गये वह इतनी खूबसूरत नींद सोई है कि लगता है आधीरात के बाद ही सुबह हो चुकी है और उसे रास्ते पर निकल पड़ना चाहिये। जाकर दूध के लिये लाइन लगा देनी चाहिए या सड़क पर खड़े होकर अखबार का इन्तजार करना चाहिये या अभी ही जाकर पन्नू की कमर पर एक लात लगा देनी चाहिए—तुम क्या टी०यू० करोगे, सुबह छ बजे वाली गेट मीटिंग निकल गयी और तुम ताने सोये हुए हो। मजदूर तुम्हारे घर के नौकर नहीं हैं कि ठहरे रहेंगे और इन्तजार करेंगे कि नेताजी उठेंगे, भाषण देंगे, हम सुनेंगे, तब जायेंगे।

उसके बाद घन्नू चौंककर उठता और घड़ी देखता फिर मुझको मारने के लिये दौड़ाता—चुड़ैल कहीं की,आधीरात को आ गयी है,परेशान करने।

सोनिया आज इतनी खुश इसलिए थी कि आज पहली बार उससे मिलने के लिये कई आदमी आये थे, जिनमें रबर कारखाने के मजदूर भी थे। सोनिया ने बहुत कुछ पूछना चाहा था, लेकिन उन्होंने इतना कहा था कि दीदी, अच्छी हो जाओ सब ठीक हो जायेगा। उन्होंने उसे सिर्फ सान्त्वना दी थी, उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं। फिर भी वह खुश थी कि जिन्दगी और मौत के बीच छिड़ी लड़ाई में एक सिपाही की तरह जूझते हुए उसने जिन लोगों को याद किया, वे उससे मिलने के लिये आये थे। उसकी खुशी का असली कारण यही था।

घन्नू का नाम याद आते ही सोनिया का चेहरा धधकते अंगारे की तरह दहक उठा। सांसों की धौंकनी तेज हो गयी, देह पसीने से भीग गई। उठना चाहकर भी वह न उठ सकी। पूरा जिस्म जख्मों से भरा है, कमर के नीचे के हिस्से के कई जोड़ टूटे हुए हैं। थोड़ी देर पहले जो वह अपने को तमाम बेचैनियों से दूर पा रही थी, फिर उसे बेचैनियों ने आ दबोचा।

वह सर उठाकर इधर-उधर देखने लगी। अगल-बगल के तमाम बेड सोये हैं। अगर कोई जागी भी हो तो निर्जीव सी पड़ी है, हिलती-डुलती भी नहीं। अकुलाहट में वह सोचती है, अस्पताल के इस वार्ड को किसी भी वस्तु या किसी भी व्यक्ति से संवादों या भावनाओं का सम्बन्ध जुड़ जाय और वह कुछ सोचने के लिये इस समय अकेली न रह जाय। लेकिन वह जानती है, ऐसा नहीं हो पायेगा। यहाँ का हर आदमी सोया है या अपने में खोया है।

वह बहुत ही बेमकसद नजरों से छत की ओर देखती है और गर्म सांसों में झुलसता हुआ वही नाम उसके होंठों पर आ जाता है—घन्नू। मेरा भैया! वे उसे दूसरी जगह की किसी जेल में ले गये हैं, वे उसे मार डालेंगे।

शायद हम फिर कभी नहीं मिल पायेंगे। भैया ने कहा था—सोना, उन्होंने मुझको अपनी काली लिस्ट में शामिल कर लिया है, मौका हाथ आते ही वे मुझे कभी भी मार सकते हैं। अगर मैं बचा हूँ तो इसलिये नहीं कि वे मुझको जिंदा रखना चाहते हैं, बल्कि उनको मेरी मौत में अपनी मौत का खतरा भी नजर आ रहा है। जिस दिन वह खतरा टलता नजर आयेगा, उस दिन वे मुझको नहीं छोड़ेंगे। लेकिन तुम यह माँ से मत कहना, आखिर वह मां ही तो है।

—लेकिन भैया, मुझसे यह सब क्यों कहते हो' मैं भी तो बहन हूँ।

—इसलिये कि इतना सुनने के बाद भी तुम मेरे संकल्पों को कमजोर नहीं करोगी। मुझे बल दोगी। हम दोनों एक साथ मिलकर पार्टी के लिये काम करते हैं, हम सब कुछ समझते है, इसीलिये।

लेकिन भैया, तुम मां के बारे में ऐसा क्यों सोचते हो, उसने ही हमें इस लायक बनाया है। तुम जिस खतरे की बात कह रहे हो, उसने कभी भी उस तरह के खतरे से बचने तक की बात कही है? ''''''

—तुम ठीक कहती हो, फिर भी माँ माँ है। उसे यह सब नहीं जानना चाहिये।

और सोनिया जब आँख बन्द करती है तो उसकी पलकों के कोर भींग गये होते हैं, वह सोचती है, उन्होंने कैसे शुरू किया था। सबसे पहले कहा था, यह शरीफों का मुहल्ला है,यहाँ राजनीति नहीं चलेगी। उचक्का होने की पहली निशानी राजनीति करना है। तब, शायद राजनीति शब्द ही उनके खिलाफ जाता था। उन्होंने सोचा था, जो भी राजनीति से दूर रहेगा, हमारा रहेगा। इसीलिये उन्होंने नारा दिया था—हर शरीफ आदमी राजनीति से दूर रहता है। उन्होंने धन्नू से कहा था—तुम यह क्या अधनंगे लोगों का हुजूम लेकर मुहल्ले की नींद हराम किया करते हो, कोई और काम नहीं है?

जरूरी होती जा रही थी। उसे गुण्डे पकड़ कर ले गये। सोनिया बचाने गई वे उसे भी पकड़ ले गये। मैं नही जानती, उनका क्या होगा, वे नहीं भी लौट सकते हैं। मैं यह कहने आई हूँ कि आज से तुम अपने लीडर खुद हो।'

सोनिया सोचती है, माँ ने उस सुबह की गेट मीटिंग में यही सब कहा होगा। इसके बाद मजदूरों ने हड़ताल कर दी थी। उन्होंने बिलकुल अनुशासित होकर जुलूस निकाला। जुलूस थाने की ओर प्रदर्शन करने के लिये आ रहा था। अगर पुलिस ने सक्रिय सहायता न की होती तो गुण्डों में इतनी शक्ति नही थी कि वे मजदूरों को उजाड़ देते। मजदूर जोश में थे, वे नारे लगाते हुए तेजी से थाने की ओर बढ़ रहे थे। इस दौड़ती, दहाड़ती अनुशासित भीड़ को देखकर सवारियाँ सडकों के किनारे दुबक गयी थी। लेकिन उन्होंने जुलूस को थाने तक नहीं आने दिया था, रास्ते में ही गोली चला दी थी।

सोनिया एक-एक क्षण, एक-एक घटना को विस्तार से याद कर रही है। कभी-कभी उसे लगता है, इतने भयावह क्षणों को वह कैसे जी सकी है।...... हवालात के सीकचों में भय से वह काँप-काँप जाती थी। दहाड़ती भीड़ और गोलियों की ठाँय-ठाँय की आवाज से उसके दिमाग पर हथौड़े पड़ रहे थे। अपने जख्मों के दर्द को भूलकर सीकचों को पकड़ कर वह खड़ी हो गई थी। तभी उसने देखा पुलिस की एक गाड़ी थाने के अहाते में आकर लगी। गाड़ी का पिछला दरवाजा खोल कर सिपाहियों ने खून से लथपथ एक लाश घसीट कर लान की घास पर फेंक दी। लाश मुँह के बल पड़ी थी। पहचानना कठिन था। वह जोर से चीख उठी—बताओ, बताओ, कौन है? तुमने किसका शिकार किया है! वह कौन है, वह लाश किसकी है? तुम कितनों को मारोगे? कारखाने का हर मजदूर सीना खोलकर आगे बढ़ रहा होगा। सड़क लाशों से पट गयी होगी। इतनी गोलियों की बारूदी गंध से यहाँ भी दम घुट रहा है। जरा चेहरा दिखा दो, वह कौन है, कौन-कौन!

और वह फफक कर रो पड़ी थी। सीकचों पर अपना सर पटक दिया था। लेकिन किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। कई सिपाही लाश घेर कर खड़े थे। थोड़ी देर बाद ही सिपाहियों के मुंह से एक नाम सुना था विजन, और वह बेहोश हो गयी थी।

माँ अस्पताल आती हैं, बताती है कि पुलिस और गुंडों ने मिलकर हड़-ताली मजदूरों को फिर कारखाने में नहीं जाने दिया। अब वे कहते हैं, हमने इलाके को 'आजाद' करा लिया है। तीनों यूनियन आफिसें जला दी गयी हैं। मजदूर इकट्ठा होकर सिर्फ अपने क्वाटरों तक ही रह गये हैं। बाहर निकलते ही उन पर हमला होता है। क्वाटरों पर रोज बम फेंके जाते हैं। पुलिस जाती है और रोज किसी न किसी मजदूर को पकड़ कर पीटती है और गिरफ्तार कर लेती है।

माँ मामा के घर जाकर रहने लगी हैं। हमारा घर जला दिया गया है। हमारी किताबें जल गयी हैं, वे तमाम चिट्ठियाँ और डायरियाँ जल गयीं हैं—जो विजन ने लिखी थीं। और फिर उन्होंने विजन को मार डाला है। अब वह नहीं है। अब उसका कुछ नहीं है। एक तस्वीर भी नहीं, एक खत भी नहीं। गुण्डों ने सब कुछ खत्म कर दिया। पता नहीं, वह मुझको क्या समझता था? सोचती हूँ, मैं मर गयी होती और वह जिंदा होता। वह पूरे दस आदमियों के बराबर था और मैं तो एक से भी कम हूँ।

अस्पताल में दीनबंधु दा भी मुझको देखने के लिये आये थे। मेरे माथे पर हाथ रखा था। उनका स्पर्श पा मेरा हौसला कई हाथ ऊपर हो गया था। थोड़ी देर के लिये लगा था, मैं सचमुच अच्छी हो गयी हूँ। अब मैं जा सकती हूँ, मन्नू दा के बदले गेटमीटिंग कर सकती हूँ, विजन के बदले यूनियन आफिस में बैठकर मजदूरों का क्लास ले सकती हूँ। पाँच आदमियों का स्क्वाड लेकर विजन जैसी ऊँची आवाज में नारे लगा सकती हूँ और मोड़ पर खड़ी होकर अपने भाषणों से किसी भी

मागती भीड़ को ठिठका सकती हूँ। विजन कहा करता था—स्ट्रीट कार्नर की मीटिंगों के भाषण क्लाइमेक्स से ही शुरू होते हैं और क्लाइमेक्स पर ही खत्म हो जाते हैं। नहीं तो फुटपाथ पर भागती भीड़ को ठहराया नहीं जा सकता।

सोनिया ने विजन के बारे में इतना कभी नहीं सोचा है। लेकिन आज बहुत कुछ सोच रही है। विजन अगर कुछ चाहता भी रहा तो वह गूंगा था। उसने मुझको इतना लिखा, इतना कहा, लेकिन कभी कुछ नहीं कह सका। जब भी वह कहने पर होता था, तो किनारे से शुरू करता था और किनारे पर ही खत्म कर देता था। एक दिन जब वह खूब संजीदा था, तो इतना-भर कहा था—सोना, अगर मैं कहूँ कि व्यक्तिगत जीवन में मुझको कुछ नहीं मिला तो तुम कहोगी—तुम बड़े तुच्छ आदमी हो, ऐसा क्यों सोचते हो? इन हजारों मजदूरों और आस-पास के लोगों को देखो, वे ऐसा कहाँ सोचते हैं। उन्हें भी तो कुछ नहीं मिला। सच है, मैं ऐसा कुछ पाने की चेष्टा नहीं करता। वक्त हमें इसकी इजाजत नहीं दे सकता। फिर भी, कभी-कभी ऐसा खयाल उठता है तो वह वर्जित है क्या? क्योंकि यही तो वह फीलिंग और कांशस है जो हममें तड़प पैदा करती है और हम चाहते हैं कि वे हजारों लोग जो हमारी तरह ही अभावों में रहकर भी, हमारी तरह नहीं सोच पाते हैं; उनमें भी यह तड़प भर दें और इस स्थिति को बदलने के सिलसिले में हम एक साथ हो जायें। उसकी संजीदगी देखकर मैं हँस पड़ी थी, कहा था—तुम यह डबल डायलाग अकेले बोल रहे हो, मैं तुमको कहाँ कुछ कह रही हूँ।

मुझे शुरू के वे दिन याद आते हैं। मैं और घन्नू सड़क के किनारे बस स्टाप पर दीनबंधु दा के साथ खड़े थे। तभी विजन वहाँ से गुजरा था। दीनबंधु दा को इलाके का एम. एल. ए. समझ कर उसने सलाम किया

था। उसके जाने के बाद उन्होंने कहा था, तुमलोग इसको पहचानते हो?

—हां, इसी मुहल्ले का है, रास्ते में नजर आ जाता है।

—बोल्ड और बांडस है, इससे बातें किया करो।

फिर कई दिनों के बाद ही वह धन्नू दा के साथ मेरे घर आया था। और घंटों बहस करने के बाद भी अधूरी बहस छोड़ कर चला गया था। लेकिन फिर उसके आने में देर नहीं हुई थी। कुछ ही दिनों में ऐसा लगा कि वह धन्नू के कामों को हलका करने के लिये ही आया है।

शुरू शुरू में विजन बेहद बेलगाम था। सामने वाले की बिना परवाह किये इतना कटु रिमार्क, इतने बेबाक ठहाके, इतने पुरजोर मजाक कर सकता था कि जो उसे गलत न समझ ले वह फरिश्ता है। लेकिन गलत समझे जाने का दुख भी उसे कितना होता था यह भी मैंने देखा है। तब वह कितना गिड़गिड़ा कर सफाई दे सकता था कि उस पर करुणा नहीं, बल्कि उसकी संजीदगी पर हँसी आ जाय!

जब गुण्डों ने सबसे पहले हमले शुरू किये और हम जब अचानक इस हमले को रोक नहीं पाये, तब विजन ने दृढ़ संकल्पों के स्वर में कहा था—हमारा प्रतिशोध उस मासूम औरत की तरह का नहीं हो सकता जिसका बदमाश पति पिण्ड छुड़ाने के लिये उसे मार डालना चाहता था और वह यह सोचकर संतोष कर लेती थी कि चलो मुझे मारा तो इसको फाँसी हो जायेगी।

शायद इसीलिये उन्होंने इस दृढ़ संकल्प वाले को चुन लिया। मां ने बताया था, उन्होंने विजन को रास्ते से पकड कर सही सलामत ही गाड़ी में उठाया था। उन्होंने उसे चलती गाड़ी में ही गोली मारी। विजन जैसे लाखों दृढ़ संकल्प वालों को वे गोलीमार कर ही अपने कब्जे में लाना चाहते हैं। उसका रोम-रोम दहक उठता है, किस विजेता-भंगिमा से उन्होंने विजन की लाश घास पर लाकर पटकी थी।

उन्होंने धन्नू भैया को गिरफ्तार कर लिया है, विजन को मार डाला है। हमारे तमाम लोगों को इलाके से उजाड़ दिया है। माँ और उसके जैसे सैकड़ों आज अपने ही मुहल्ले में शरणार्थी हैं। आज कल वे हर मोड़ पर हर अपरिचित व्यक्ति की तलाशी लेते हैं और उसका परिचय पूछते हैं। वे सोचते हैं, इस 'आजाद' इलाके में किसी दूसरे व्यक्ति को आने का अधिकार नहीं है। वे बन्द कारखानों को तभी खोलने देंगे, जब वे अपनी मर्जी और अपनी राजनीति के विरोधी लोगों का सफाया कर देंगे।

सोनिया सोचती है, उन्होंने मुझे इतना क्यों सताया? आखिर मुझसे उनको क्या खतरा था? इतना सता-सता कर बार-बार पूछने का क्या मतलब था? वे मुझसे क्या जानना चाहते थे? उन्होंने पहले मुझको नहीं मारा पीटा। सिर्फ मेरे सर के बालों को तीन अंग्रेजी अक्षरों में छाँट दिया। ताकि इससे चिन्हित हो जाय कि मैं किस पार्टी की हूँ। उन्होंने सोचा, मैं अपमान और क्षोभ से मर जाऊंगी। फिर वे मुझ पर दहशत के हथौड़े मारेंगे, ताकि मैं मानसिक रूप से विक्षिप्त होकर दिशाहारा हो जाऊं। फिर वे मुझको अपने कब्जे में लेकर वह सब कुछ मुझसे कबूल करा लेंगे, जो वे चाहते हैं और जो मैं नहीं चाहती। इस प्रक्रिया में वे हर कदम पर खुश हो रहे थे कि वे सफल हो जायेंगे और मैं हर कदम पर मजबूर हो रही थी कि मैं बरदाश्त कर लूंगी।

जब उनको असफलता मिली, तब उनकी बौखलाहट बढ़ गयी। उन्होने एक जलती कन्दील मेरे होठों से छुआ दिया था। मैं चीखी नहीं थी, मेरी आँखों में आँसू आ गये। उनका गुस्सा और भी भड़का था। वे चार थे, मुझे घसीटकर एक दूसरे कमरे में ले गये थे। चतुर्दिक बिछी कुर्सियों पर वे बैठ गये थे। फिर मुझको बीच में खड़ा कर दिया था। वह सबसे भयावह स्थिति थी। मुझको बहुत देर तक उन चारों के बीच उसी तरह खड़ा रहने को कहा गया। वे कुछ बोल नहीं रहे थे, कुर्सियाँ

बिल्कुल नजदीक नजदीक थी। वे शुतुरमुर्ग की तरह गर्दन उठा उठाकर मेरे चेहरे पर सिगरेट का धुआं फेंक रहे थे। वे मुझको उसी तरह असीमित समय तक खड़े रहने को कह रहे थे। सताये जाने का वह सबसे नारकीय रूप था। मैं हर शारीरिक कष्ट बरदाश्त कर सकती थी, मगर वह स्थिति जी नही सकती थी, मैं बीच ही में बेहोश होकर गिर पड़ी।………फिर तो पता नहीं, मैं कितनी बार बेहोश हुई। मैं नंगी कर दी गयी। मेरे जिस्म का हर हिस्सा जख्म से भर गया। मुझको इतना नंगा रखा गया कि शर्म की परिभाषा बदल गयी। मुझे लगा जानवरों के सामने नंगे और पर्दे का कोई अर्थ नही है, क्योंकि वे नंगे और पर्दे में भेद नहीं कर सकते।

फिर भी मैं जिन्दा हूँ। विजन मर गया। माँ शरणार्थी बन गयी। मैं सोच नहीं पाती कि घन्नू भैया लौट कर आ सकेंगे या नही। मैं अस्पताल से निकलकर अपने मुहल्ले में जा सकूंगी या नही। लेकिन मैं यह सब नही सोचूंगी, मैं अब भी जिन्दा हूँ। कल सवेरे रबर कारखाने के चार मजदूर मुझको देखने आये थे। सुबह हो गयी है, आज भी बहुत से लोग मुझको देखने के लिये आयेंगे। □□

भगतराम

★

उस बड़े से हालनुमां कमरे के बीचो बीच एक मेज पड़ी थी। मेज पर नन्ही सी कंदील जल रही थी। कंदील की घुटी-घुटी-पीली-सी रोशनी में एक आदमी पश्चिम की ओर रुख किये सीने पर हाथ बांधे, नमाज की मुद्रा में खड़ा था। वह खानदानी कांग्रेसी था, इसीलिये कांग्रेस आफिस में चिराग जलाने चला आया था। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कोई खानदानी मुसलमान शाम होते ही मस्जिद में चिराग जला आता है।

कमरे में खड़े आदमी के सामने की दीवार पर एक बड़ा-सा कलेंडर टंगा था। कलेंडर पर गांधी जी की तस्वीर थी। वही चिरपरिचित तस्वीर—गांधी जी लाठी लिये खड़े हैं। कलेंडर पुराना था और नीचे का एक हिस्सा फट चुका था। देखने पर लगता था, जैसे गांधी जी आधी लाठी और आधी टांग पर खड़े हैं। कमरे में इस कदर सन्नाटा था कि गांधी जी की तस्वीर पर रेंगती हुई छिपकली की सरसराहट सुनाई पड़ रही थी। छिपकली उस फटी तस्वीर पर रेंग-रेंग कर फतिंगों का शिकार कर रही थी।

फर्श पर कुछ हैंडबिल और कुछ पोस्टर बिखरे पड़े थे। उनमें एक बड़ा-सा चुनाव पोस्टर भी था, जिसमें भूतपूर्व प्रधानमंत्री की तस्वीर थी। तस्वीर में वे तिरंगे फूलों की माला पहने संतोष की हंसी हंस रही थीं। फोटो के नीचे लिखा था—"नेता ने वादे पूरे किये!" फोटो बेहद खूबसूरत था, मगर फर्श पर जाने अनजाने पांवों के नीचे आते-आते बदरंग हो गया था और कहीं-कहीं असली रंग बाहरी धब्बों के अन्दर छिप गया था।

दिया जलाने वाला आदमी बिल्कुल मूरत जैसा ही खड़ा था, हिलडुल भी नहीं रहा था। यहां तक कि वह अपनी दाढ़ी भी नहीं खुजला रहा था। हालांकि उसकी दाढ़ी सलीके की भी नहीं थी, जंगली घास की तरह ही उसके चेहरे पर उग आई थी। उसी प्रकार उसके सर के बाल भी बढ़े हुए थे। अर्थात् एक नजर में वह पूरी तरह से "बाबा" था। तेल-साबुन कंघी से वास्ता न होने के कारण उसकी दाढ़ी सुने मांतर के सूखे झाड़-झंखाड़ की तरह निसठ लग रही थी। उसकी दाढ़ी और सर के बाल में जरूर जूं का डेरा होगा। लेकिन वह कमाल का आदमी था। इतनी देर में उसने एक बार भी दाढ़ी या सर नहीं खुजलाया।

इस आदमी का नाम भगतराम है। इसने एक अन्य स्थानीय कांग्रेसी नेता पर दाढ़ी-मुड़ी बढ़ा रखी है और सरेआम घोषणा की है कि जब वह नेता ट्रस्टी-बोर्ड के चुनाव में हार जायेगा, तभी वह दाढ़ी और सर मुड़ायेगा। ट्रस्टी-बोर्ड का नेता इस भगतराम को प्राविडेंट फण्ड से कर्ज नहीं दिलाता और खुद उसे कर्ज देकर सूद में उसके वेतन का टिकट छीन लिया करता है।

भगतराम का खयाल है कि इस शहर में अब वह अकेला असली कांग्रेसी बच गया है। बाकी सब असली कांग्रेसी या तो बड़े नेता बनकर यहां से चले गये या मर-सिरा कर खपखुप गये। अब के तो सब ससुरे समेरा हैं—खादर पर उग आये कुकुरमुत्ते जैसे—उन्हें किसी ने

बोया नहीं था। सीने पर गोली झेली थी भगतराम ने, आजादी के लिये जेल काटी थी भगतराम ने, अपना घर (हालांकि उनका अपना कोई घर नहीं था।) लुटाया था भगतराम ने। इस तरह के कितने क्या कुछ नहीं किये थे भगतराम ने। लेकिन सन् ७२ में जब दादा हरिकिशोर जी ने राजनीति से सन्यास लेकर पिंजरापोल सोसाइटी की सेवा में अपना बाकी जीवन लगाने की घोषणा की और एम० एल० ए० बनने से इनकार कर दिया (हालांकि वे पिछले दो चुनावों से हार रहे थे) तब भगतराम को आशा बंधी कि इस बार उनको कांग्रेस का टिकट मिल जायेगा, इस प्रकार उनका जीवन व्रत सफल होगा।
भगतराम को सबसे बड़ा दुख जिला कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी मुखर्जी बाबू के आचरण से हुआ था। आजादी की लड़ाई के दिनों में भगतराम जेल में मुखर्जी बाबू के पांव दबाया करते थे। उस समय मुखर्जी बाबू ने भगतराम जी को 'अच्छी सेवा' का सर्टीफिकेट भी लिखकर दिया था, जो आज भी भगतराम जी के मूल्यवान कागजों में एक है। लेकिन मौका आने पर मुखर्जी बाबू ने भगतराम जी को पहचाना नहीं। पांच-पांच हत्याओं के आसामी रमखेलवना को टिकट दे दिया और वह बदमाश वोटरों को पीटकर और इलाके से खदेड़ कर एम०एल०ए० बन बैठा।
भगतराम जी को भारी निराशा तब हुई, जब रमखेलवना कांग्रेस की गर्दन पर चढ़ बैठा। भगतराम जी जामा उघाड़ कर दिखाते घूमते रह गये कि सन् ४६ में रशीद अली दिवस पर स्टेशन में आग लगाते समय गोली मैंने खायी थी—यह देखो पांजर पर गोली का निशान। लेकिन किसी ने उनकी नहीं सुनी। यह तो उनको बहुत बाद में मालूम हुआ था कि उनके दल के बड़े नेताओं ने रमखेलवना को एम०एल०ए० बनाने के लिये ही हरिकिशोर जी को बलपूर्वक राजनीति से रिटायर कराया था। अब हरिकिशोर जी रिटायर करा दिये गये हैं, इसलिये भगतराम की उनके प्रति ममता उमड़ आई है। नहीं तो हरिकिशोर जी ने ही सन्

५२ के चुनाव में सबसे पहले उड़ाया था कि भगतवा के पांजर पर गोली का निशान नहीं, खुजली के घाव का निशान है। तब से आज तक भगतराम पांजर उघाड़ कर सरे बाजार घूम रहे हैं, लेकिन किसी ने भी नहीं माना कि उन्हें गोली लगी थी और जिस लुकाठी से स्टेशन जला था, वह उन्हीं के हाथ में थी—उन्होंने भी नहीं, जिन्होंने मरहमपट्टी की थी। शुरू के दिनों में भगतराम जब भरे बाजार लोगों के सामने पांजर उघाड़ा करते थे, तब उस वक्त को कांग्रेस लोकल-कमेटी के नायब सदर मौलवी एहसान हुसन उनको देखकर यह शेर पढ़ा करते थे—'चमन में लाला कली कली को दिखाता फिरता है दाग दिल का, वो यह समझता है कि दिखावे से दिलजलों में शुमार होगा।'
अब तो रमखेलवना भी कहता है कि आजादी की लड़ाई में वह भी जेल गया था और भगतराम को ही गवाह बनाता है कि जेल में उनसे उसकी मुलाकात हुई थी। हालांकि भगतराम जी ने लोगों को बता दिया है कि रमखेलवना बुट्टी सा छोकड़ा पाकिटमारी करके जेल गया था। फिर भी लोग हैं कि उसी की बात सच मानते हैं। सच तो यह है कि सन् ७२के चुनाव के पहले इस इलाके के लिये योग्य उम्मीदवार की तलाश में मुखर्जी बाबू जेल में गये थे। बड़े-बड़े शातीरों, कातिलों और जरायमपेशा लोगों का परेड उनके सामने कराया गया था। उन तमाम में पाच खूनों के आसामी रमखेलवना को उन्होंने बीछ लिया था। वे उसे जेल से निकाल लाये थे, कहा था—जाओ नेता बन जाओ, अपने यार-दोस्तों को इकट्ठा करो, कांग्रेस आफिस पर कब्जा करो, एक पढ़े-लिखे छोकड़े को ढूंढ लो, वह तुम्हारे लिये भाषण और बयान लिखा करेगा।
रमखेलवना ने एम० ए० पास छोकड़े रमेश को पकड़ा था। उससे कहा था—मैं एम० एल०ए० बनूंगा और तुमको फ्रीडम फाइटर बना दूंगा। रमेश सकपकाया था। उसने उंगली पर गिनकर देखा—उसकी उम्र आजादी की उमर से छोटी थी। रमखेलवना ने उसकी पीठ थपथपाई

थी—उम्र की क्या, वह घटती-बढ़ती रहती है—कलम की एक नोक पर। तुम पढ़ लिखकर इतना भी नहीं समझते। मैं आज ही थाने में जाकर तुम्हारा फाइल ठीक करा दूंगा। फिर झुक कर कान में कहा होगा; भगतराम का नाम कटवाकर तुम्हारा नाम लिखवाऊंगा। बेटा ले तामर पत्तर! तुमको दिलवाऊंगा।

तब से अब तक दोनों मिलकर शहर भर की छाती रौंद रहे हैं। जब मन में आता है, कारखाना बन्द कराते हैं, जब मन में आता है, खुलवाते हैं। इधर तो तीन महीने से बिलकुल लॉक आउट कराके रख दिया है। पहले ससुरे रमखेलवना को तो कोई अपनी दूकान की पटरी पर भी सोने नहीं देता था। अब वह कोठी पर कोठी झमका रहा है।

भगतराम कांग्रेस कार्यालय में चिराग जलाने के बाद ध्यानस्थ नहीं थे, यही सब सोच रहे थे। उनकी सोच का सिलसिला तब टूटा, जब रमेश कमरे में आया। रमेश सिंह, रामखेलावन जी एम०एल० ए० का स्टेटमेंट ड्राफ्टर और फ्रीडम फाइटर! तेरह यूनियनों का सेक्रेटरी!

उसके चेहरे पर हमेशा अभिजात्य तनाव बना रहता है। उसका विश्वास है कि इस दुनिया में एक भी सहज आदमी नहीं मिल सकता। यह पूरी दुनिया तनावों से पीड़ित है। खासतौर से यह शहर तो सामूहिक तनावों में फंसा हुआ है। उसने अपने विश्वासोंके अनुसार अपना स्वाभाव भी गढ़ लिया है। और तो और उसकी एक प्रेमिका है—मोतिया। वह उससे भी तना रहता है।

उसने रामखेलावन के साथ मिलकर शहर की तमाम यूनियनों को तहस-नहस कर डाला है और सब का सेक्रेटरी बन बैठा है, इसलिये कभी कभार उसके झांसे में शहर के मजदूर भी आ जाते हैं। ऐसी हालत में वह महसूस करने लगता है कि यह रामखेलावन कुछ नहीं, सब कुछ तो मैं ही हूं और उसका यह खयाल जब व्यवहार में उतरने लगता है, तब रामखेलावन से उसकी मारकाट की नौबत आ जाती है।

रमेश को देखने के साथ ही भगतराम को अपनी दाढ़ी खुजलाने की याद आई। वे अपनी दाढ़ी खुजलाने लगे, खुजलाने नहीं, बल्कि नोचने लगे और मोमबत्ती की लौ पर झुकते चले गये। शायद वे रमेश को ही पहले बोलने का मौका देना चाहते थे ताकि उसके मूड का पता लग जाय।

रमेश के सामने आने पर भी, उन्होंने सर ऊपर नहीं उठाया। रमेश ने ही उनके बाल पकड़ कर उनका माथा ऊपर उठाया—"भगत जी, आत्म-दाह करना क्यों चाहते हैं, झोंटा में आग लग जायेगी।"—और उसने फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी। भगतराम का कलेजा धुकधुकाने लगा। उन्होंने प्रार्थना के स्वर में कहा—"रमेश, बत्ती जलने दो, बड़ा अंधेरा है।"—

—"जब शहर में अंधेरा हो, तब मस्जिद में चिराग क्यों जले भगतराम जी!"

—"लगता है, यह लोड सेडिंग नहीं है, बिजली को लाइन कट गई है।" भगतराम ने अंधेरे में सहमे हुए लहजे में कहा।

भगतराम कमरे में एक जगह खड़े थे और रमेश कमरे में चक्कर काट रहा था। उसकी गुरु गंभीर आवाज अंधेरे कमरे के हर कोने से तैर तैर कर भगतराम के कानों में पिघले शीशे की तरह ढल रही थी—"बिजली की लाइन ही क्यों, शक्तियों को आपस में जोड़ने वाला हर सम्बन्ध कट गया है। अब अंधेरे में टटोलने पर भी चीजों की शक्लें पहचानी नहीं जायेंगी। या तो इस सम्पर्कहीनता से चीजों की शक्लें बदल गई हैं या स्पर्श की अनुभूति ने अपनी पहचान खो दी है। रूप-हीनता के इस दौर में हम सब के पास आरोपित आकार ही है भगतराम जी, चीजों ने तो अपने आकार गंवा दिये हैं।…"

भगतराम जी की अक्ल गुम होने लगी। ऐसा अनमेल भाषण उन्होंने कभी नहीं सुना था। उनकी समझ में नहीं आया कि रमेश कहां के लिये

यह भाषण तैयार कर रहा है। अगर वह थोड़ी देर और इसी प्रकार बोलता रहता तो भगतराम चीखकर वहाँ से भागने ही वाले थे कि रमेश माचिस की तिल्ली जलाकर मेज तक लौट आया। रोशनी देखने के बाद भगतराम की सांसों की चाल फिर स्वाभाविक हुई। लेकिन रोशनी में जब उसका चेहरा देखा तो फिर भड़क गये। वे सहम गये, उसकी आंखों में जैसे खून झांक रहा था। उन्होंने रमेश को ऐसी नजरों से देखा, जैसे कह रहे हों—"ऐ मुझे माफ कर दो।" वे सोच नहीं पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिये। ऐसी हालत में उन्हें खटाक मोतिया की याद आई। उन्होंने रमेश से पूछा—"मोतिया से लड़ कर आये हो क्या ?"

हालांकि वे सचमुच भगत थे, मगर इतना जरूर समझते थे कि रोज रोज बरजात होते जा रहे इस घोड़े का लगाम वही खींच सकती है। उन्होंने सोचा, इस मुलायम चर्चा से वह मुलायम हो जायेगा, कहा—"बेचारी कितनी अच्छी लड़की है, तुम्हारे लिये सुबह शाम अचार लेकर खड़ी रहती है।"

भगतराम इतना कहने के बाद उसके चेहरे पर अपनी बातों का प्रभाव देखने की कोशिश करने लगे। उन्होंने सोचा था, इस चर्चा के बाद उसका चढा हुआ कल्ला ढीला होगा, वह थूक घोंटेगा और स्वाभाविक हो जायेगा। लेकिन जब इतने पर भी उन्होंने उसके चेहरे को पसीजते हुए नहीं देखा तो उसे खुश करने के लिये भयातुर स्वर में गाने लगे—मन करताटे खाये के अचार पियवा। अचार पियवा !! हो अचार पियवा !!! हो अचार हो अचार, हो अचार पियवा !!!....."

भगतराम करुण आर्तनाद के स्वर में यह जनाना गीत गाते रहे। रमेश पर प्रभाव डालने के लिये वे एक ही पंक्ति को अपनी घुटती सांसों में तब तक घसीटते रहे, जब तक उन्हें हिचकी न आ गई।

बात इतनी सी है कि रमेश जब खाने बैठता है, तब उसकी पड़ोसिन मोतिया अचार का एक टुकड़ा उसकी थाली में डाल जाती है। यह बरसों

से दोनों वक्त और बिना नागा हो रहा है। अब अगर अचार का नाम मुहब्बत हो, तो मुहब्बत को अचार और अचार को मुहब्बत मान लेने में उसे क्या एतराज हो सकता था। मोतिया के अचार से वह दो लुकमा अधिक खा लिया करता रहा है। लेकिन इधर कुछ दिनों से वह आश्चर्य प्रकट करता है कि मोतिया भी वही है, अचार भी वही मगर ई ससुर मजा कहाँ गायब हो गया! भगतराम नहीं समझते कि कभी-कभी अचार मुँह का जायका भी बिगाड़ देता है।

उसे भगतराम पर दया आई और वह अपने तईं सहज हो गया। लेकिन उसका सहज होना भगतराम के लिये विश्वसनीय नहीं बन पा रहा था। वे संशय की दृष्टि से ही उसकी ओर देखे जा रहे थे।

दर-असल भगतराम रमेश से डरते हैं और रामखेलावन से डाह करते हैं। बाकी कांग्रेसियों पर तो वे गुर्राना चाहते हैं। मगर शक्ति के अभाव में गुर्रा नहीं पाते।

रमेश ने भगतराम के कंधे पर हाथ रख दिया। उसने कहा—भगतराम जी, आप डरते क्यों है। राजनीति करते हैं तो डट कर कीजिये, नहीं तो जाइये घंटी डोलाइये। जिस देवी या देवता के सामने डोलाइयेगा—घंटी या पूंछ, एक ही बात हुई, वह प्रसाद देगा ही। यही तो नियम है भगतराम!" अपनी समझ से पूरी तरह से सहज होने के बाद रमेश इस तरह की भाषा का प्रयोग कर रहा था।

इतने में बाहर जोर का धमाका हुआ। भगतराम धमाके की आवाज सुनकर जोरों से चीख पड़े, दौड़कर मेज के नीचे घुसे। घुसे नहीं, बल्कि घुसने की कोशिश में मेज से बुरी तरह टकराये। उन्हें गहरी चोट लगी। चोट खाये आदमी की तरह उन्होंने दुबारा चीखने की कोशिश तो की, मगर वे पहले ही काफी जोर से चीखे थे, इसीलिये दुबारा उनके मुँह से चीख नहीं निकली। मोमबत्ती जमीन पर गिर गई। इतने में कमरे का दरवाजा फटाक से खुला और दो आदमी अन्दर आ

गये। वे इतने परिचित थे कि अंधेरे में भी पहचाने जा सकते थे। वे दोनों पार्टी कार्यकर्ता थे। जब से कांग्रेस ने कैडर पर आधारित पार्टी बनाने का निर्णय लिया है, तब से ऐसे कैडरों की भर्ती उसने शुरू की है। इनमें एक का नाम भानु सिंह था और दूसरे का चतुरंग। मारपीट अगर भानु सिंह का पेशा था तो चतुरंग की हॉबी।

भानु सिंह कहा करता था कि वह रमेश का भाई है। उसका कहना था कि यह बात उसके कान में माँ ने मरते समय कही थी। पहले वह सिर्फ भानु था, मगर माँ की मौत के बाद भानु सिंह बन गया। जब रमेश को यह बात मालूम हुई तो उसने कोई एतराज नहीं किया। उसके पास कोई ऐसा धन नहीं था, जिसे कोई बांट लेता, इसलिये किसी रमेश को भाई मान लेने में उसे क्या एतराज हो सकता था।

रमेश ने फर्श से मोमबत्ती उठा कर फिर जला दी और भगतराम मेज के नीचे से निकल कर पहले वाली मुद्रा में छाती पर हाथ बांध कर मोमबत्ती के सामने खड़े हो गये। उन्होंने लौ पर अपनी नजर गड़ा ली। मोमबत्ती की लौ पर नजर गड़ाये हुए पूछा—"बम क्यों मारा ?'—जैसे मोमबत्ती से ही पूछ रहे हों।

—'टेस्ट कर रहा था।'—भानु सिंह ने जवाब दिया। वह फर्श पर भूतपूर्व प्रधान मंत्री के फोटो वाले पोस्टर को फैलाकर उस पर बैठ गया था और छूरी की नोंक से बोतल का काग निकालने लगा था।

भगतराम पूरी तरह से मोमबत्ती पर झुक गये और बोले—ऐसा नहीं करना चाहिये। यह अच्छी बात नहीं है। जो भी मजदूर हमारे साथ हैं, वे भाग जायेंगे।'

—'अच्छी बात क्यों नहीं है ? जब रूस, अमरीका, चीन अपने बम टेस्ट कर सकते हैं तो हमी क्यों नहीं कर सकते।'—भानु ने यह बात कही। वह बोतल का काग उधेड़ने में व्यस्त था। चतुरंग हो-हो करके हंस पड़ा। वह एक बेंच पर बैठ चुका था।

रमेश ने भगतराम का माथा ऊपर उठाते हुए कहा—मजदूर तुम्हारे साथ है, यह किसने कहा ? जिस आवाज पर तुम एतराज कर रहे थे, सिर्फ वही तुम्हारे साथ है भगतराम ! इसके सिवा कुछ नही !'

इस बात पर भगतराम ने दुविधा में सर हिलाया, जिसमें हामी या इनकार कुछ भी समझना मुश्किल था। उन्होंने संशय की दृष्टि से कांग्रेस आफिस की दीवारों को देखा, गांधी जी के फोटो को भी, जिस पर अब भी छिपकली फतिंगों के शिकार की आशा में बैठी हुई थी। उन्होंने घबड़ाहट की नजर अपने पर भी डाली और उनका मन हुआ कि इस बार वह खुद मोमबती पर फूंक मार कर वहाँ से भाग जाय।

चतुरंग बेंच से उठकर भानु के पास गया और बताने लगा कि काग कैसे उड़ाया जाता है। उसने एक हाथ में बोतल लेकर दूसरे हाथ की तलहत्थी से बोतल की पेंदी में जोर से मारा। काग उड़कर दीवार से जा टकराया और शराब का छींटा दीवार पर, भानु की देह पर और जिस पोस्टर पर वह बैठा था, उस पर बिखर गया।

चतुरंग खुली बोतल लेकर भगतराम के पास पहुँचा और कहा—'दाढ़ी बाबा, इसे चलाना है, (उसने बोतल दिखाई) बाहर जाकर किसी दूकान से गरमा-गरम चिखना ला दो।

भगतराम तमक कर अलग हट गये। उन्होंने चतुरंग को जलती नजरों से देखा। वे रमेश के सिवा किसी को कुछ समझना नहीं चाहते थे। चतुरंग के साथ बात करते समय उन्होंने अपनी आँखों में अंगार भर लिया, कहा—'तुम लोगों को पता नही यहाँ की तमाम दूकानों के चूल्हे बुझ गये हैं।'

भगतराम ने अपनी बातों का प्रभाव देखने के लिये जब रमेश की ओर नजर घुमाई तब उन्होंने अपनी आँखों का अङ्गार बुझा लिया। उनकी निगाह डरती सी रमेश के चेहरे तक गई।

रमेश ने हामी भरी—'हाँ, सिर्फ दूकानों के नहीं, इस शहर के ज्यादातर

घरों के चूल्हे भी बुझ गये हैं। जिस दिन से चिमनी का धुआं बुझा, उसी दिन से एक-एक कर चूल्हे बुझने लगे।'

—अब रामखेलावन जी चाहें तो चूल्हे जलें—'यह बात चतुरंग ने कही।' वह अँजुरी में शराब उड़ेल कर सुड़क रहा था।

रमेश ने जवाब दिया—'अब राम खेलावन के बाप भी चूल्हे नहीं जलवा सकते। उसका खुद धुवां निकल चुका है। अब वह किसी भी चिमनी से धुवां नहीं निकलवा सकता।'

पोस्टर पर बैठे भानु दूसरी बोतल उठा कर उसका काग उड़ा ऊँट की तरह ऊपर मुंह उठाकर गटगट पी रहा था। आधी बोतल खाली करने के बाद उसने अपना सर नीचे झुकाया और पोस्टर से सरकते हुए पोस्टर की खूबसूरत तस्वीर को देखकर कहा—'का हो, धुंवा उठी कि ना! ना उठी? हमारे पास धुंवां है। हम तो हुकुम के बंदे हैं। अभी कहिये तो दो ठो मशाला गेट पर पटकें। धुंवां फकफक उठने लगेगा। कितना तेज होता है, उसका धुंवां। जिधर जाता है, सरसराता चला जाता है। नाक, कान, आँख सब छेदता निकल जाता है।'''चुप क्यों हैं, बोलिये तो। हम हैं संतान बंदे मातरम की! आपका आदेश मिले। मतलब कि ''जो राऊर अनुशासन पाऊँ'। कंदुक, कंदुक, कंदुक''''।''

भानु ने बोतल रख झोले से बम निकाला और पोस्टर के फोटो की नाक पर रखकर उसे नचाने लगा और किड़किड़ कड़ाम कड़ाम जैसे निरर्थक बेमेल शब्द मुंह से निकालने लगा।

यह नंगई देखकर भगतराम का खानदानी खून गरमाया। लेकिन सिर्फ गरमाया, उफना नहीं। उन्होंने रमेश की ओर शिकायत भरी नजरों से देखा और कहा—''पार्टी आफिस, जो पवित्र आश्रम है, गुंडों का अड्डा बना दिया गया है।''

भगतराम का खयाल था कि रमेश पर इसका अच्छा असर पड़ेगा। वह

सोचेगा कि भगत की शिकायत रमखेलवना से है। उसी ने पार्टी आफिस को गुंडों का अड्डा बनाया है।

रमेश ने इस बात को महसूस किया। उसने भगतराम के कंधे पर हाथ रखा—"भगतजी, आप क्यों परेशान होते हैं। आप का रिश्ता तो सिर्फ चिराग जलाने से है। बाद बाकी काम बाद बाकी लोगों को संभालने दीजिये।"

पोस्टर पर बैठे भानु ने बोतल को दुबारा मुंह से लगाया और उसे पूरी तरह से खाली कर कोने में दूर फेंक दिया। बोतल दीवार से टकराकर टूट गई। वह तस्वीर के सामने घुटनों के बल अपना पेट उघाड़ कर बैठ गया और कहने लगा—"अपना भी चूल्हा बुझ गया है। इस खाली तबेले में माल ढरकाया है तो आंखों में फोकस आ गया है। अभी मेरे सामने हजार पावर का बल्ब जल रहा है। अब यह दाढ़ीवाला मुझे बिनोवा भावे लग रहा है। बेटा भगत, तुम बनो बिनोबा, मैं तो हनुमान हूँ, इस फोटू का हनुमान! मैं पहाड़ नहीं, कंदुक उठाता हूँ, उठाता नहीं, उछालता हूँ, मारता हूँ—भड़ाक-भड़ाक!" (वह पोस्टर हाथ में लेकर खड़ा हो गया और पोस्टर से अपना डायलाग जारी रखा।)—"आप तो दीवार से लुढ़क कर भुइयां आ गई हैं। दीवारों पर दूसरे पोस्टरों ने कब्जा जमा लिये हैं। अब तो पोस्टर पर पोस्टर मारा नहीं जा सकता। *अब अनुशासन परब उलट कर अपने पर लागू हो गया है।* ए हमार बिनोबा, बोलिये न (उसने भगतराम को सम्बोधित किया) अब कहाँ चिपकाऊँ? चिपकाऊँ, चिपकाऊँ ......।" वह हाथ में पोस्टर लेकर नाचने लगा। नाचता रहा और चीख चीखकर गाता रहा—उजाड़ कइलू टोला.....।' नाचते नाचते उसने पोस्टर को चिथड़ा चिथड़ा कर दिया और टुकड़ों से अपना चेहरा ढक लिया।

—"यह तो हद है।"—भगतराम ने अपना माथा पकड़ लिया।

—"यहीं कोई हद नहीं है भगतराम।" अभी तो शुरू है।—रमेश के स्वर में तीखा व्यंग था।
"क्या शुरू है ?"—रामखेलावन ने उसी वक्त कमरे में प्रवेश किया। थोड़ी देर के लिये कमरे में सन्नाटा छा गया। रमेश एक किनारे जाकर सिगरेट जलाने लगा। भगतराम अपना बाल ठीक ठाक कर एटेंसन खड़े हो गये। भगतराम जी को ज्यादातर खड़े ही देखा जाता है। जब कभी वे बैठे हुए नजर आते हैं तो ऊँघते दिखाई देते हैं। रामखेलावन को देखकर उनकी परेशानी बढ़ जाती है, ऐसी हालत में तो वे और भी नही बैठ सकते थे।
भानु और चतुरंग एक कोने में बैठकर अब भी पिये जा रहे थे। जब राम खेलावन ने देखा कि कोई भी उनकी ओर मुखातिब नहीं हो रहा है तो वह भानु और चतुरंग के पास गया, ठोकर मार कर उनकी बोतल उलट दी।
भानु सिंह ने कहा—रामखेलावन जी, आप का टाट उलट गया है। अब आप बोतल उलट कर क्या करेंगे। आज लेबर अफसर ने साफ इनकार कर दिया। अब उसे कारखाना नही खोलना है, अब उसे नेता नहीं चाहिये। अब आप बत्ती बुझाइये, दूकान बढ़ाइये, गाहक खतम !'
—'नहीं, नहीं, यह झूठ है, षड़यंत्र है। यह हो नही सकता। लेबर अफसर नन्दी परसों कह रहा था, कारखाना खोलने का फैसला हुआ पड़ा है। शर्त है कि हम एक तिहाई मजदूरों को पहले खदेड़ दें। उसने कहा था कि कल मैं रुपया भेज दूंगा। तुम एक सभा करो, मजदूरों से अपील करो कि भाइयो आप धान की रोपनी करने गांव चले जाइये। तब तक हम लोग लड़ाई जारी रखते हैं। हम लोग कम्पनी की ईंट उखाड़ लेंगे और वही एक एक लेकर गांव चले जायेंगे।—भानु मेरी ओर देखो, पैसा तुम्हारे ले आने की बात थी। कल ही तय हुआ था कि रमेश भाषण लिखकर रखेगा और आज मुझको रिहर्सल करा देगा।"

"अगर इतने पर भी काम नहीं चलेगा तो बमपाट जुलूस निकलेगा। आज कल बिजली नहीं रहती, अंधेरे में जुलूस निकलेगा। जुलूस की अगुवाई भगतराम करेंगे। जुलूस जब मजदूरों के क्वाटरों के बीच पहुँचेगा तो कम्पनी के गुंडे अचानक जुलूस पर हमला करेंगे। भगतराम के हाथ से तिरंगा झंडा छिटक कर गिर जायेगा। वंदे मातरम का नारा लगा कर वे भी गिर जायेंगे। उनका माथा फट जायेगा, खून बहेगा।''''
भगतराम हिले—"नहीं, नहीं, यह झूठ है। तय था कि सिर्फ पट्टी बंधेगी। मैं बकरी का खून शीशी में रखूंगा और गिरने के बाद माथे पर उड़ेल लूंगा। यह माथा फटनेवाली बात गड़बड़ है।"—भगतराम ने प्रतिवाद किया।

—"टिरटिर मत कीजिये। इसके लिये आप को सवा दो सौ रुपये तय है, मिलेगा।"—रामखेलावन ने भगतराम को शांत करना चाहा।
—"अरे, क्या मिलेगा। अभी मेरा भूख हड़ताल वाला रुपया बाकी है। मैं झमेले में पड़ूं, मेरा हाथ पांव टूट जाय तो मुझे कौन देखेगा।"—जैसे भगतराम कराहे।

—"ठीक है, आप वही करते, घबड़ाते क्यों है। आप पर हमले की जिम्मेदारी चतुरंग पर थी। आप उसके साथ रिहर्सल कर लीजिये।"—रामखेलावन ने भगतराम जी को आश्वस्त किया।

—"हां, और तय था कि" (रामखेलावन फिर उन तीनों की ओर मुखातिब हुआ)—"इस गहमागहमी में मजदूरों के क्वाटरों पर मशालों की बरसा कर दी जायेगी। अगर चांस मिला तो एकाध घरों में आग लगा दी जायेगी और उससे भी अधिक चांस मिला तो एक आध लाश गिरा दी जायेगी। थाने में तय रहेगा। पुलिस आयेगी, क्वाटरों से मजदूरों की गिरफ्तारी होगी। हम इधर भीतर-भीतर मजदूरों के बीच भाग कर जान बचाओ का प्रचार करेंगे। इस खदेड़ाई में जो क्वाटर

खाली होते जायेंगे, कम्पनी उन्हें तोड़ कर गोदाम बनाती जायेगी।''''
यह सब तय था, आज रुपया मिल जाने की बात थी।''

—''लेकिन अब वह रुपया नहीं देगा। आपको उसने जो जोप दी है, उसे भी हांक ले जायेगा।''—एक बोतल से तलहत्थी पर तलछट ढरका कर तलहत्थी चाटते हुए भानु ने यह बात कही।

''—रुपया क्यों नहीं देगा ?''—रामखेलावन बौखलाया।

—इसलिये कि अब तुम डेढ़ आदमी भी इकट्ठा नहीं कर सकते। अब वह तुम्हें डेढ़ पैसा भी नहीं देगा।''—रमेश ने सिगरेट पीते-पीते राम खेलावन की ओर पीठकर के यह बात कही।

रामखेलावन ने चीखकर रिवाल्वर निकाल ली।'' —रमेश तुम सीधे घूम कर खड़े हो जाओ। तुम मुझको रिप्लेस नहीं कर सकते। तुम ने कम्पनी से सौदा कर लिया है। मैं यह कभी नहीं होने दूंगा। इसे ही पर जमना कहते हैं, मैं इसे काट दूंगा।''

रिवाल्वर देखकर भगतराम में हरकत आई। वे बीच में आ गये। उन्हें लगा, अब अनर्थ होगा। बिचबिचाव करने लगे—''तुम लोग यह सब बन्द करो। अब मिटिंग शुरू करो। पोलिटिकल एजेंडा है। अब पोलिटिक्स गझिन होती जा रही है। अब पोलिटिक्स में बहुत दिमाग लगाने की जरूरत है। यह नया लेबर अफसर नन्दी धोखेबाज है, झगड़ा लगाता है। हम लोगों को पोलिटिक्स के बारे में सोचना चाहिये।''''

—''धत् तेरी पोलिटिक्स की माँ''''की।'' —रामखेलावन ने भगतराम को बीच से हटा दिया।—''रमेश तुम सीधे घूमकर खड़े हो जाओ।''

—''हां, उस्ताद! पोलिटिक्स की मा''''की।'' भानु सिंह रामखेलावन को चुनौती देता हुआ उठ खड़ा हुआ। :रामखेलावन रिवाल्वर की नली दूसरी ओर घुमाये कि इसके पहले ही एक जोरों का धमाका''''।

बहुत रात गये देखा गया कि मजदूर बस्ती की अँधेरी गली में एक घायल पागल बुड्ढा खून-खून-खून चीखता हुआ दौड़ रहा था। मजदूर सोये हुए थे, सिर्फ कुत्ते जाग रहे थे, भौंक-भौंककर लोगों को जगा रहे थे। कांग्रेस आफिस में रामखेलावन की लाश को भानु सिंह और चतुरंग तिरंगे झण्डे से ढक रहे थे और रमेश इस मौत पर अखबारों के लिये बयान लिखने में व्यस्त था। □□